VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2012 TO 31.12.2014)

६२, ८ नवम्बर–2013

# विश्वज्योति

## विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य ( डॉ. ) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
( सञ्चालक )

आदरी सह-सम्पादक :
प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. ( श्रीमती ) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. ( सुश्री ) रेणू कपिला
पटियाला

## शुल्क की दरें

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| आजीवन ( भारत में ) | : | १२०० रु. | आजीवन ( विदेश में ) | : | ३०० डालर |
| वार्षिक ( भारत में ) | : | १०० रु. | वार्षिक ( विदेश में ) | : | ३० डालर |
| सामान्य अङ्क ( भारत में ) | : | १० रु. | सामान्य अङ्क ( विदेश में ) | : | ३ डालर |
| विशेषाङ्क ( एक भाग भारत में ) | : | २५ रु. | विशेषाङ्क ( एक भाग विदेश में ) | : | ६ डालर |

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 ( पंजाब, भारत )

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक ( निवास ) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

# विषय-सूची


| लेखक | विषय | विधा | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|
| महात्मा चैतन्य मुनि | धारक पोषक तू है | कविता | 2 |
| डॉ. भवानीलाल भारतीय | आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का बहुआयामी लेखन | लेख | 3 |
| श्री देवनारायण भारद्वाज | वेद-व्योम से झरता गीता का मानवोदय पञ्चामृत | लेख | 6 |
| डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा | ईश्वर-भक्ता रानी रत्नावती जी | लेख | 10 |
| डॉ. सत्यव्रत वर्मा | हमारे संग्रह के कुछ साहित्यिक पत्र | लेख | 14 |
| श्री बाबूलाल शर्मा 'प्रेम' | बन गई गीत से ग़ज़ल | कविता | 18 |
| डॉ. मुकेश कुमार अरोड़ा | मलूकदास के काव्य में प्रतीक-योजना | लेख | 19 |
| डॉ. सरिता भटनागर | दयानन्द दर्शन और यथार्थ जीवन | लेख | 23 |
| डॉ. रवीन्द्र कुमार | हरियाणवी भाषा में व्यंग्य-पटुता | लेख | 25 |
| श्री विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद' | प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य की प्रासंगिकता | लेख | 28 |
| श्री अखिल | भक्ति के दोहे | दोहे | 31 |
| डॉ. रमाकान्त दीक्षित | है सरल आज़ाद होना, पर कठिन है आज़ाद रहना | लेख | 32 |
| डॉ. शीतलाप्रसाद पाण्डेय | गीतोक्त आगम-विमर्श | लेख | 34 |
| श्रीमती (डॉ.) रमा चौधरी | महाकवि कालिदास की रचनाओं में 'संस्कार' | लेख | 39 |
| सुश्री रितु कुमारी | वाल्मीकि रामायण में सत्य की महत्ता | लेख | 44 |
| | विविध-समाचार | | 46 |
| | संस्थान-समाचार | | 48 |
| | पुण्य-पृष्ठ | | 49-56 |

# विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६२ होश्यारपुर, कार्त्तिक २०७०; नवम्बर २०१३ संख्या ८

वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्
चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता
बहु बाह्वोर्बलम् ॥
(अथर्ववेद, 19. 60. 1)

मेरे मुख में (वाङ्) वाणी ठीक हो। मेरी (नसोः) नासिकाओं में प्राण ठीक हो। मेरी (अक्ष्णोः) आखों में (चक्षुः) दृष्टि ठीक हो। मेरे (कर्णयोः) कानों में (श्रोत्रं) श्रुति ठीक हो। मेरे (केशाः) बाल (अपलिताः) श्वेत न हों। मेरे (दन्ताः) दांतों में से (अशोणाः) खून न निकले। मेरी (बाह्वोः) भुजाओं में (बहु) बहुत (बलम्) बल हो। (वेदसार-विश्वबन्धुः)

# धारक पोषक तू है

**–महात्मा चैतन्य मुनि**

*ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।*
*स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥*
*(यजु० 13-14)*

स्व-प्रकाश सबको प्रकाशित करने वाले,
हे आराध्य, सूर्य चन्द्रादिक रचने वाले।
तू ही सृष्टि का पोषक व धारक है।
दीन दु:खियों का तू ही उद्धारक है॥

उत्पन्न हुए जड़ चेतन का तू स्वामी है,
अनुपम, अद्भुत तू अन्तर्यामी है।
प्रलय से पूर्व भी तू संचालक है।
समस्त रचना का तू ही पालक है।

पृथिवी आदि का धारक-पोषक तू है,
हर मौनता में प्रभु उद्घोषक तू है।
तू अधिपति है, जगत् अधिष्ठाता है।
ब्रह्माण्ड को रचता और चलाता है॥

हे सुखस्वरूप अपनी भक्ति का दान दो,
हे शुद्ध-बुद्ध विरक्ति का वरदान दो।
तेरे सान्निध्य हेतु तप का वरण करें।
'चैतन्य' नित योगाभ्यास अनुसरण करें॥

**– महादेव, सुन्दर नगर, 174401 (हि. प्र.)**

# आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का बहुआयामी लेखन

**–डॉ. भवानीलाल भारतीय**

रेलवे का एक उच्च पदाधिकारी अच्छे वेतन की नौकरी छोड़ कर बीस रूपये मासिक पर किसी पत्र का सम्पादक बनेगा, इस पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। किन्तु है यह यथार्थ घटना। रायबरेली जिले के दौलतपुर गांव का एक युवा महावीर प्रसाद द्विवेदी सामान्य शिक्षा प्राप्त कर जी. आर. पी. रेलवे में सिग्नेलर का पद प्राप्त कर लेता है किन्तु अपने अंग्रेज अधिकारी के समक्ष उसका स्वाभिमान उसे झुकने से रोकता है तो वह अपनी अच्छी खासी नौकरी को तिलांजलि देकर इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस द्वारा प्रकाशित मासिक सरस्वती का सम्पादन भार एक नगण्य से वेतन पर कबूल कर लेता है। यहीं से आचार्य द्विवेदी की साहित्य–साधना आरम्भ होती है। वस्तुत: इलाहाबाद में इण्डियन प्रेस की स्थापना एक बंगाली सज्जन हरिकेशव घोष ने की थी। यहीं से 1900 में सरस्वती मासिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। प्रथम दस वर्षों में इसका सम्पादन नागरी प्रचारिणी सभा काशी के अधिकारियों के जिम्मे रहा। तत्पश्चात् आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने यह दायित्व संभाला।

भारतेन्दु काल तक हिन्दी गद्यलेखन तथा काव्यरचना के लिए अलग–अलग मानक अपनाये जाते थे। स्वयं द्विवेदी जी के शब्दों में **''हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा प्रयुक्त होती है।''** उनका संकेत था कि जहां गद्य–लेखन खड़ीबोली में होता है वहां काव्य के लिए ब्रज–भाषा को ही उपयुक्त समझा जाता है। आचार्य द्विवेदी ने इस दुविधा को समाप्त किया और सरस्वती में काव्यकृतियां भेजने वाले कवियों को खड़ी बोली में लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणाम यह निकला कि हिन्दी का एक बृहत् कविसमुदाय खड़ीबोली में सशक्त काव्यरचना करने लगा। यदि मैथिलीशरण गुप्त को खड़ीबोली के इन कवियों में प्रथम स्थान दिया जाये तो अन्य कवियों में रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही तथा ठाकुर गोपाल शरण सिंह आदि की गणना होगी। ध्यान रहे कि आचार्य द्विवेदी के प्रभामण्डल से पृथक् रहकर अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध तथा जयशंकर प्रसाद जैसे लब्धप्रतिष्ठ कवि पहले से ही खड़ीबोली कवियों का नेतृत्व कर रहे थे।

यह प्रसिद्ध बात है कि सरस्वती का सम्पादन–भार संभालते ही द्विवेदी जी गद्य के परिष्कार, उसे

व्याकरण सम्मत बनाने तथा उसे प्रौढ एवं परिपक्व रूप देने के लिए कटिबद्ध हो गये थे। उनके पास प्रकाशनार्थ गद्य-पद्य की जो रचनाएं आतीं उन्हें सुधारने, संवारने तथा सुष्ठु बनाने में वे इतने दत्तचित्त हो जाते कि कभी-कभी तो उनके द्वारा सुधरी इन रचनाओं का मूल स्वरूप ही बदल जाता। भाषा-परिष्कार की यह प्रक्रिया पर्याप्त समय तक चली। नतीजा यह रहा कि हिन्दीभाषा को एक परिष्कृत तथा व्यवस्थित रूप मिला।

सरस्वतीसम्पादन का उनका यह सेवाकाल लगभग दो दशक तक चला। इन वर्षों की सरस्वती की फाइलों को उठाकर आप देखें तो पायेंगे कि द्विवेदी जी ने विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में छपी नवीन जानकारियों से युक्त सामग्री को अपनी लेखनी का स्पर्श देकर पाठकों के लिए अभिनव रूप में पेश किया है। उनके लिखे ऐसे सम्पादकीय तथा अन्य टिप्पणियां कालान्तर में पृथक् लेखसंग्रहों में एकत्र किये जाकर ग्रन्थाकार छपे।

बात यह थी कि आचार्य द्विवेदी ने अपने स्वाध्याय के बल पर अनेक भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। हिन्दी के साथ-साथ उन्हें संस्कृत का ज्ञान तो पारिवारिक परम्परा से प्राप्त हुआ ही था। फलतः वे संस्कृत की कालजयी कृतियों की विस्तृत चर्चा करने में समर्थ हुए। ऐसी रचनाओं में कुमारसम्भव-सार, नैषधचरितचर्चा, विक्रमांकदेवचरित चर्चा, कालिदास की निरंकुशता (कालिदास के काव्य में अपाणिनीय प्रयोग) जैसे ग्रन्थ वे लिख सके। अपनी सहज काव्य-रचना-प्रतिभा ने उन्हें किरातार्जुनीय (भारवि) तथा मेघदूत के पद्यानुवाद के लिए प्रेरित किया और वे इनका पद्यान्तर करने में सफल हुए।

अपनी रेलवे की नौकरी के दौरान वे महाराष्ट्र तथा गुजरात में अनेक स्थानों पर रहे थे अतः उन्हें मराठी तथा गुजराती का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त था। उनका अंग्रेजीज्ञान प्रशस्त था। फलतः उन्होंने यूरोप के तत्कालीन दार्शनिकों तथा चिन्तकों के सुविख्यात ग्रन्थों को हिन्दी में अनूदित करने की योग्यता अर्जित कर ली। जे. एस. मिल. की प्रसिद्ध रचना लिबर्टी का अनुवाद स्वाधीनता, हर्बर्ट स्पेन्सर की कृति एज्यूकेशन का अनुवाद शिक्षा, फ्रांसिंस बेकन के निबंधों का अनुवाद बेकन विचार रत्नावली आदि इसी श्रेणी के ग्रन्थ हैं।

वस्तुतः द्विवेदी जी का जीवन और कार्य सतत साधना का परिणाम था। प्रेमचंद जी के पत्र हंस के आत्मकथा विशेषांक के लिए भेजे गये अपने आत्मवृत्त परक लेख में उन्होंने अपने ज्ञानोपार्जन तथा संघर्षमय जीवन के बारे में कुछ रोचक बातें लिखी थीं। ''मैं एक ऐसे देहाती का एकमात्र आत्मज हूँ जिसका मासिक वेतन मात्र

दस रूपये था। अपने गांव के देहाती मदरसे में थोड़ी-सी उर्दू और घर पर थोड़ी-सी संस्कृत पढ़कर 13 वर्ष की आयु में मैं 36 मील दूर रायबरेली के जिला स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने लगा। आटा, दाल घर से पीठ पर लादकर ले जाता था। दाल ही में आटे के पेड़े या टिकियां पका कर पेट-पूजा किया करता था। रोटी बनाना तब मुझे आता ही नहीं था। दो आने फीस देता था। संस्कृतभाषा उस समय उस स्कूल में वैसी ही अछूत समझी जाती थी जैसे कि मद्रास के नम्बूदिरी ब्राह्मणों में वहां की शूद्र-जाति समझी जाती है। विवश होकर अंग्रेजी के साथ फारसी पढ़ता था। एक वर्ष किसी तरह वहां काटा। फिर पुरवा, फतहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे। कौटुम्बिक दुरवस्था के कारण मैं उससे आगे न पढ़ सका। मेरी स्कूली शिक्षा वहीं समाप्त हो गई।''

अपने इसी आत्मवृत्तान्त में द्विवेदी जी अपने लेखन में आये एक स्खलन का उल्लेख करना नहीं भूलते जब उन्होंने किसी प्रकाशक द्वारा अच्छा पारिश्रमिक पाये जाने के लालच में लार्ड बायरन के यौनशिक्षा विषयक एक ग्रन्थ ब्राइडल नाइट का सार संक्षेप सोहागरात नाम से लिखा किन्तु आचार्य पत्नी के विरोध के कारण वे उसे प्रकाशित नहीं करा सके।

यह सन्तोष का विषय है कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन तथा लेखन क्षेत्र में उनके नेतृत्व का सम्यक् मूल्यांकन उनके जीवनकाल में हो सका। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 1931 में उन्हें साहित्यसेवा के उपलक्ष्य में अभिनन्दनपत्र भेंट किया तथा दो वर्ष बाद आचार्य शिवपूजनसहाय के सम्पादन में द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ उन्हें समर्पित किया गया। यहां तक कि उनके कतिपय शिष्यों के उद्योग से द्विवेदी मेले का आयोजन कर उन्हें विशेष रूप में सम्मानित किया गया। द्विवेदी मेले के प्रस्तावक ठाकुर श्रीनाथसिंह तथा पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि साहित्यकार थे। 21 दिसम्बर 1938 को आचार्य द्विवेदी का निधन हो गया।

यह वर्ष उनके जन्म की 150वीं जयन्ती का वर्ष है।

**-3/5, शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर**

# वेद-व्योम से झरता गीता का मानवोदय पञ्चामृत

–श्री देवनारायण भारद्वाज

एक फकीर के पास कुछ लोग पहुँचे, बताया यहाँ पर दो देशों की टीमें खेल खेल रही हैं। एक का नाम 'भा' दूसरी का नाम 'पा' है, बताइए कौन-सी टीम जीतेगी? फकीर सोच ही रहे थे कि इन्हीं लोगों में से किसी ने कह दिया– क्या 'भा' टीम जीतेगी, फकीर ने भी हामी भरते हुए कह दिया तुम ठीक कह रहे हो। थोड़ी ही देर लगी थी कि किसी दूसरे व्यक्ति ने कह दिया, नहीं-नहीं 'पा' टीम जीतेगी। फकीर ने कहा कि तुम ठीक कह रहे हो। तभी तीसरा व्यक्ति बोल पड़ा– फकीर महोदय ऐसा कैसे हो सकता है कि 'भा' भी जीते और 'पा' भी जीते– जीतेगी तो कोई एक ही टीम। फकीर महोदय ने मुस्कान के साथ उत्तर दिया–तुम ठीक कह रहे हो–और मौन हो गये।

आजकल देश की सरकार ऐसे ही किसी फकीर की लकीर पर चलती दिखाई दे रही है। गली-मोहल्ला, बाजार हो या सरकार का दरबार हो, सभी स्थलों पर नये-नये अपराध-अत्याचार होते जा रहे हैं। जिन्हें देख-सुनकर प्रजा में त्राहि-त्राहि मच जाती है। सत्ताधारी या सत्ताभिलाषी नेता लोग रोते-बिलखते पीड़ित परिवार की ओर दौड़ लगाते जाते हैं और आर्थिक सहायता का आश्वासन देकर लौट आते हैं। बस एक पार्टी का व्यक्ति जो कह देता है, उसी की पुष्टि करने में सभी अन्धे की तरह दौड़ लगाने लगते हैं। विचार का तो काम ही नहीं। बस कहना है, टी. वी. पर आना है, अपने को दिखाना है। असलीयत जाय भाड़ में। यह है भेड़चाल, जिसका खामियाजा मुख्यरूप से बाद में पार्टी को भोगना पड़ता है।

सरकार का विशाल तन्त्र होते हुए भी वह अपराधियों को दण्डित नहीं कर पाती है, क्योंकि जो दण्डाधिकारी होते हैं–वे स्वयं दण्ड के अधिकारी (पात्र) होते हैं। घोषित अपराधियों से बढ़कर उनके स्वयं के अपराध-अत्याचार कहीं बढ़कर देखने में आते हैं। ऊपर से नीचे तक सभी भ्रष्टाचार में संलिप्त पाये जाते हैं। अपराधी भी अपने अनाचार-अत्याचार पर तब गर्व करते दिखाई देते हैं। अपराधों की सूची यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है। नित्यप्रति के अखबार एवं दूरदर्शन, घर-बाजार सर्वत्र उनको प्रत्यक्ष दिखाते रहते हैं। चोरी, डकैती, लूटमार से बढ़कर सूदखोरों की चढ़ाई से परिवार के परिवार आत्महत्या पर बाध्य होते देखे जाते हैं। कहाँ तक कहें, कौन-सा ऐसा स्थान हैं जहाँ बुराई नहीं और कौन-सा ऐसा स्थान है जहाँ बुराईयों को छिपाने के लिए समाज में वे अपराधी अपने को भक्त, दानी, उदार तथा धर्म निरपेक्षतावादी घोषित करने के लिए सामाजिक दिखावा नहीं करते। पर वह सब व्यर्थ है क्योंकि इसके दुष्परिणाम को श्रीमद्भगवत्गीता (17.27-28) में दर्पण की भांति प्रदर्शित किया गया है। यथा –

**यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।**
**कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥**

अर्थात् यज्ञ, तप, दान और अन्य समस्त कर्म यदि तुम परमात्मा को समर्पित करके अन्त:करण की शुद्धता और सभ्यता के साथ करते हो तो तुम जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य-मोक्ष, शाश्वत आनन्द प्राप्त करोगे। ब्रह्म के लिए और ब्रह्म के नाम ओम् को लक्ष्य कर यदि तुम कर्म करते हो, तो तुम पर परमात्मा की परम शान्ति और पूर्णत्व की वृष्टि होगी। इनके निमित्त किया गया पुरुषार्थ सत्कर्म कहलाता है। यदि इसके विपरीत कार्य करता है तो उसके विषय में कहा गया है –

**अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।**
**असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥**

अर्थात् बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान और किया हुआ तप 'असत्' कहलाते हैं। इसलिए हे अर्जुन, ये न तो इस लोक में न ही मरणोपरान्त फल देने वाले हैं। ये क्रियायें उतनी ही व्यर्थ होंगी, जितनी कि पर्वतीय प्रदेश में चट्टानों पर गिरती वर्षा की बूँदें अथवा भस्मीभूत अग्नि में डाली गयी घृत आहुतियाँ। बिना श्रद्धा के मनुष्य अहंकारी व दम्भी बन जाता है। उसका हृदय कठोर हो जाता है। बिना श्रद्धा के शत-शत यज्ञ भी क्यों न किये जायें और ईश्वर के समर्पण भाव से क्यों न हों, समस्त विश्व की सम्पदा भी यदि बिना श्रद्धा और समर्पण भाव के दान कर दी जाये, इसका कोई मूल्य नहीं होगा।

आचार्य चाणक्य इस यज्ञविधान को व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व-वसुधा के सुख-सौहार्द के लिए अनिवार्य मानते थे। हवन-होम से ही घर, घर बनता है, इसी से देवपूजा, संगतीकरण एवं दान की त्रिवेणी बहती है। इसीलिए ता होम शब्द अंग्रेजी के शब्द कोश में जाकर 'घर' का पर्यायवाची बन गया। आचार्य चाणक्य किंचित् आक्रोश में आकर कहते हैं–

**न विप्रपादकोदककर्दमानि न वेद-**
**शास्त्रध्वनिगर्जतानि।**
**स्वाहा-स्वधाकारविवर्जतानि श्मशान-**
**तुल्यानि गृहाणि तानि॥**

आचार्य चाणक्य की इस कठोरता को कोमलता में तभी बदला जा सकता है, जब घर-घर में उनके आदेश का परिपालन इस रूप में हो–

**स विप्रपादोदककर्दमानि स वेद-**
**शास्त्रध्वनिगर्जतानि।**
**स्वाहा स्वधाकारसंयुतानि स्वर्गेण**
**तुल्यानि गृहाणि तानि॥**

सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मनुस्मृति के सन्दर्भ से बताया है कि स्त्री की प्रसन्नता से सब कुल प्रसन्न और उसकी अप्रसन्नता से सब दु:खमय हो जाता है। प्रथम पंक्ति को तो खूब दोहराया जाता है–*जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देव संज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं।* श्लोक की यह प्रथम पंक्ति है, इसको खूब दोहराया जाता है, पर इसकी दूसरी पंक्ति है कि *जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता, वहाँ सब क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।* इस ओर किसी का ध्यान तक नहीं जाता। बात सत्कार न होने तक सीमित नहीं है, वह तो दुत्कार, तिरस्कार, हत्याकार तक पहुँचती रहती है। व्यक्ति ने यदि अपना परिवार ही बिगाड़ लिया, तो समाज, राष्ट्र एवं ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का निर्माण नितान्त असंभव है।

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व मानवोदय के पांच सोपान हैं। आकार-प्रकार-रूप-रंग एवं वचन से कोई प्राणी मनुष्य लगता है, पर वास्तव में यह उसका संक्रमणीय स्वरूप है, वह मानव, दानव या देव कुछ भी हो सकता है। दानव अपने अहंकार की मदहोशी के सागर में डूबे रहने के कारण तथा देवतागण अपनी भोग-लिप्सा के आकाश पर उड़ते रहने के कारण मानवता के हरे-भरे सुरभित धरातल से वंचित रहते हैं। यह मानव ही हैं जो अपने दुश्चरित्र के बोझ से भारी होकर अपयश के समुद्र में डूब जाते हैं या फिर अपने सच्चरित्र की वातास से हल्के होकर आसमान की ऊँचाई को प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि वे अपने सदाचरण की वसुन्धरा पर सदैव अडिग बने रहते हैं। इस मानव देहधारी प्राणी को अवमानना के अध:पतन से बचाकर कीर्तिकामना का सिरमौर बनाने के लिए भगवती गीता के मानवोदय पंचामृतम् का रसपान उपयोगी है। वहाँ कहा गया है कि-

शरीर-पद या स्थानीय परिस्थिति, कर्तापन पृथक्-पृथक् प्रकार के साधन, नाना प्रकार की विभिन्न चेष्टायें तथा इस प्रसंग में दैव-जन्म-जन्मान्तर में पूर्वकृत कर्मों के फल का प्रभाव- मनुष्य शरीर, वाणी तथा मन से न्यायानुकूल अथवा न्याय विरुद्ध जो भी कार्य प्रारम्भ करता है, उसके ये पांच कारण होते हैं (गीता, 18.14-15)। मनुष्य अपनी योग्यता व परिश्रम से इन कारणों को अपने अनुकूल करके उच्च पद पर जा पहुँचता है। उसके अधीन आज्ञापालन के लिए अनेक कर्मचारी होते हैं। वह उन पर निर्भर रहकर स्वयं कुछ नहीं करता है तो असफल हो जाता है, वह पदच्युत भले न हो, किन्तु अपयश का शिकार अवश्य बन जाता है। जो अपना कर्तापन बनाये रहता है, अपने उपकरणों का प्रयोग करता रहता है, तो वे उपकरण या यन्त्र उसके नियंत्रण में रहते हैं। जैसे शरीर में स्थापित अन्त:करण एवं बाह्यकरण, सदुपयोग से सबल बने रहते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ निष्क्रिय छोड़ देने पर व्यर्थ हो जाती हैं और क्रियाशील बनाये रहने पर विभिन्न चेष्टाओं में सहायक बनी रहती हैं। "करत करत अभ्यास से जड़मत होत सुजान" की कहावत चरितार्थ हो उठती है। इस प्रकार मनुष्य शरीर-मन-वाणी से उचित व अनुचित जो भी कृत्य करते हैं उसे लिए यही पांचों बिन्दु उत्तरदायी होते हैं।

वेद कहता है कि "*कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो में सव्य आहित:*" (अथर्व 7.50.8) जिसका दाँया हाथ कर्तव्य हेतु आगे बढ़ता रहता है, उसके लिए हर प्रकार की जीत बाँये हाथ की मुट्ठी में आती रहती है, अन्यथा "*अकर्मा: दस्यु*"(वेद) कर्महीन व्यक्ति देव से दस्यु बन जाता है। श्लोक में वर्णित करण-इन्द्रियाँ व अन्त:करण जब काम-क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार के पञ्च गरल से ग्रसित हो जाते हैं, तब मनुष्य का पतन हो जाता है, वह पशु-पक्षी व अन्ध-योनियों में चला जाता है। जब यही करण-उपकरण वेदप्रदत्त पञ्चामृत से परिपुष्ट हो जाते हैं तो मनुष्य को दैवत्व, स्वर्ग या मोक्ष के प्रशस्त पथ पर अग्रसर कर देते हैं (देखिये यजुर्वेद अध्याय 34 मन्त्र सं. 11)

**पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।**
**सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥**

अर्थात् शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियाँ नदियाँ हैं। चक्षु से प्रवाहित होने वाली ज्ञान नदी रूप-जल से भरी है तो श्रोत्र से चलने वाली शब्द रूप जल से, नासिका से चलने वाली नदी घ्राण-प्राण रूप जल से रसना से चलने वाली नदी वाक्-स्वाद रस रूप जल से, तथा त्वचा से, चलने वाली नदी स्पर्श रूप जल से, प्रवाहित हो रही है। एक-एक ज्ञानेन्द्रिय से, एक-एक विषय का ग्रहण कर यह सम्पूर्ण पञ्च भौतिक संसार हमारे ज्ञान का विषय बन जाता है। ऐसे ही गृहणी रूपी सरस्वती अपनी सन्तानों के अन्नमय कोश को नीरोग, प्राणमय को सबल, मनोमय को निर्मल, विज्ञानमय को दीप्त और आनन्दमय कोश को सदा सोल्लास से संतृप्त करती है। घर-घर में मातायें सरस्वती होकर बच्चों की सर्वांगीण उन्नति की साधिका बनती हैं।

इस पञ्चामृत का पान कर लेने वाला फकीर वह उदासीन फकीर नहीं होता है, जिसका प्रारम्भ में वर्णन किया गया है। वह फकीर राजाओं का राजा हो जाता है। देखिये इस फकीर का धीर गम्भीर किन्तु नीर सा सरस स्वरूप। प्रातःकाल को राजधानी के प्रवेश द्वार पर वरिष्ठ राज-प्रशासकों की भीड़ लगी है। सहसा बाहर से एक फकीर का वहाँ प्रवेश होता है। सभी ने फकीर को प्रणाम तो किया, किन्तु उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। बोले हमारे राज्य का नियम है कि राजा की मृत्यु हो जाने पर राजधानी में प्रातः प्रथम प्रवेश करने वाले व्यक्ति को राजा बनाया जाता है। वह पांच वर्ष तक शासन करता है, फिर पास में बहती नदी के पार उसे जंगल में छोड़ दिया जाता है। कई लोग तो इस दहशत में पांच वर्ष से पहले ही मर जाते हैं। जो महाभोग में पड़कर पांच वर्ष पूरे कर लेते हैं, उन्हें नदी पार जंगल में भेज दिया जाता है, जहाँ वे हिंसक पशुओं का शिकार हो जाते हैं। जब बचने का कोई मार्ग दिखाई नहीं दिया, तो वह फकीर सिंहासन पर बैठ गया।

मन्त्रिमण्डल को आदेश कर प्रजारञ्जन पूर्ण सुचारू राज्य संचालन किया। अन्तिम वर्ष में नदी पर पुल बनवाया, जंगल को व्यवस्थित करके सुन्दर नगर बसा दिया। पांच वर्ष पूर्ण होने पर जनता-जनार्दन के मध्य अपना विदाई समारोह आयोजित किया। नदी के पार जाने की योजना बतायी। सभी शासन-तन्त्र एवं प्रजातन्त्र एक स्वर से उस फकीर राजा को राज्य त्यागकर न जाने के लिए मनाने लगे, उसने संसार नदी के इस पार व उस पार अथवा इहलोक एवं वह लोक दोनों ही सुन्दर सुखमय बना लिये थे। वही एक फकीर क्यों, कोई भी अमीर या साधारण जन जो उक्तानुसार "वेद-व्योम से झरता गीता का मानवोदय पञ्चामृत" पान कर लेता है, वह प्रजा-प्रभु दोनों का ही प्यारा बन जाता है।

-'वरेण्यम' अवन्तिका प्रथम, रामघाट मार्ग, अलीगढ़-202001 (उ. प्र.)

# ईश्वर-भक्ता रानी रत्नावती जी

–डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

राजस्थान में जयपुर के निकट आमेर नगर में रहने वाली सुनरवाजीत की पुत्री रत्नावती जी में आरंभ से ही सब प्रकार के भले गुण विद्यमान थे। आप महान् भक्त राजा पृथ्वीराज के कुल की वधू थीं तथा भक्तों में श्रेष्ठ थीं। ईश्वर की कथा सुनने में, कीर्तन करने में आपकी बहुत श्रद्धा थी। भक्तों की भीड़ आपको अच्छी लगती थी। बड़े-बड़े महोत्सवों में सम्मिलित होकर बहुत प्रसन्न होती थीं। भगवान् के चरणकमलों के चिन्तन में लीन रहती थीं। भक्ति के आचरण में बाधा डालने वाले पति की ओर से इन्होंने अपना मन दूर कर लिया था और ईश्वर की भक्ति में मग्न रहती थीं। आमेर के राजा मानसिंह के छोटे भाई माधोसिंह की रत्नावती जी रानी थीं। इनके समीप सेवा के लिए एक दासी विराजमान रहती थी। वह भगवद्भक्ता दासी कभी 'नन्द किशोर', कभी 'नवल किशोर' तथा कभी 'हा वृन्दावन चन्द्र' कह कर नेत्रों में पानी भर लेती थी।

एक दिन रानी ने उस दासी से पूछा तुम बार-बार क्या कहती रहती हो, किस का नाम लेती रहती हो? उसे सुनकर मेरा हृदय भी उधर खिंचता है और मेरे मन में आता है कि मैं भी इसी प्रकार नाम का उच्चारण करूं। इस प्रश्न को सुनकर दासी व्याकुल हो गई, उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। दासी की ऐसी दशा देखकर रानी की भी वही दशा हो गई। कुछ देर बाद स्वस्थ-चित्त हो कर दासी ने उत्तर दिया– महारानी जी! "आप इस बात को मत पूछिए। दिन-रात राज-सुख भोगिए। मेरी इस दशा का कारण यह है कि मुझ पर एक प्रेमी सन्त की कृपा हो गई है, अतः प्रेम-वियोग के सुख-दुःख को मेरा तन सह रहा है।"

फिर रानी के विशेष आग्रह पर और उनकी उत्कण्ठा को देख कर दासी ने प्रेम-मार्ग के रहस्य का वर्णन किया। उसके समर्थन में व्रजधाम के रसिक किशोरमणि सन्तों के चरित्र और उनके उपदेश सुनाए। उसका रानी के हृदय पर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि उसने दासी को उसकी सेवा-शुश्रुषा से छुड़ा दिया और आदरपूर्वक उसे अपने से ऊँचे आसन पर बैठाया। उस दासी को अपना गुरु बना लिया।

रानी रत्नावती जी दासी के मुख से भगवान् के सुन्दर रूप और गुणों को सुनती रहतीं। इससे भगवान् के दर्शनों की अभिलाषा तीव्र हो गई। फिर एक दिन रानी ने दासी से कहा–आप कुछ उपाय कीजिए, मनमोहन के दर्शन करवा दीजिए। दासी ने कहा–भगवान् के दर्शन पाना बहुत कठिन है। उनके दर्शन के लिए राजा लोग राज्य-सुख को छोड़ कर, विरक्त होकर धूलि में लोटते हैं, फिर

भी भगवान् के दर्शन नहीं कर पाते हैं। वे तो केवल एकमात्र विशुद्ध प्रेम के वश में हैं और उसी से दर्शन देते हैं। अत: सच्चे प्रेमभाव से भगवान् की सेवा करो, तभी वे आप पर कृपा करेंगे। रानी रत्नावती जी ने दासी के उपदेशानुसार इन्द्रनीलमणि की एक श्रीमूर्ति बनवाई। भाव के अनुसार भगवान् अर्चना-विग्रह के रूप में प्रकट हो गए। अत: रानी इसी अर्चा-विग्रह की सेवा में लग गईं। विविध प्रकार के भोग-समर्पण कर भगवान् को बहुत प्रेम करतीं। भगवान् को रात्रि में शयन करा कर रात में जब रानी शयन करतीं तो स्वप्न में भगवान् सेवा को स्वीकार करते हुए दर्शन देते। रानी पर गहरा प्रेमरंग चढ़ गया। नित्य ठाकुर जी का वस्त्र-आभूषणों से सुन्दर श्रृंगार करतीं। जिस शोभा-सागर का ओर-छोर नहीं है, उसे टकटकी लगाकर निहारती रहतीं।

रानी रत्नावती जी के मन में भगवान् के दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा थी। वह फिर भी नित्य दासी से पूछती ही रहतीं कि भगवान् के दर्शन पाने का क्या उपाय है? यह सुनकर दासी ने कहा-आप महल के निकट ही एक सन्त-निवास बनवाइए और नगर से बाहर सभी मार्गों पर पहरेदारों को बैठा दीजिए। उन्हें अच्छी प्रकार समझा दीजिए कि जो कोई भी भगवान् के प्यारे भक्त आते-जाते मिल जाएँ, उन्हें अपने साथ आदरपूर्वक यहां पर ले आवें। फिर उनके चरणों को धोकर उन्हें ठहराएं और अनेक प्रकार के व्यंजन उनके सामने परोस कर उन्हें भोजन करावें। उस समय खिड़की के परदे में से उनके आप दर्शन करें। तब वहां पर आपको श्यामसुन्दर प्रत्यक्ष दिखाई देंगे।

रानी रत्नावती जी के महल के निकट सन्त-निवास बन गया और वहां पर भक्तजन आने लगे। रानी उनकी सेवा करतीं और उनके दर्शन करतीं। इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा। एक दिन सन्त-निवास में वे सन्त पधारे, जिन्हें व्रजभूमि प्रिय थी। रानी ने दासी से कहा- मैं इन सन्तों के निकट जाकर इनके श्रीचरणों का स्पर्श करना चाहती हूँ। दासी ने कहा- आप रानी हैं, इसलिए आप महल से बाहर जा नहीं सकती हैं। रानी ने कहा-रानीपने को मैंने त्याग दिया है और अब मैं सन्तों की दासी हूँ। इतना कह कर रानी उठ कर चली ही थी कि दासी ने उसका हाथ पकड़ कर रोक दिया। रानी फिर कहने लगी-अब मुझ से रहा नहीं जाता। आप यह बताइये कि कुल की लज्जा के कारण सत्संग न करके दु:ख सहना उचित है? अत: अब मैं लोक-लज्जा और कुल की मर्यादा को त्याग कर सत्संग का ही सुख प्राप्त करूंगी।

ऐसा कह कर दासी के द्वारा रोकने के बावजूद रानी राजमहल से निकल कर सन्त-निवास में पहुँच गई। उसने वहां पर सन्तों के चरणों से लिपट कर प्रार्थना की- भगवन्! अपने हाथों से साधु-सन्तों को प्रसाद परोसने की मेरी बहुत अभिलाषा है। सन्तों ने उसे देखकर जान लिया कि रानी भगवान् के भक्तों के रस में डूब चुकी है। फिर उन्होंने कहा-जैसी तुम्हारी इच्छा है वैसा ही करो।

साधु-सन्तों की अनुमति पाकर रानी ने सोने के थाल में विविध प्रकार के व्यंजनों से बहुत श्रद्धा और प्रेम से सन्तों को भोजन करवाया। भोजन के पश्चात् उनको चन्दन लगाया और ताम्बूल खिलाया। भक्तों के रूप में भगवान् की रूपमाधुरी का दर्शन कर रानी के नेत्र सजल एवं सरस हो गए। दूसरी ओर सारे आमेर नगर में शोर मच गया कि रानी परदे से बाहर आ गई है और लोग उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़े। राजा के मन्त्री ने यह समाचार दूत द्वारा राजा के पास दिल्ली भिजवा दिया।

मन्त्री द्वारा भिजवाए गए समाचार को पढ़ते ही राजा के शरीर में आग लग गई। संयोगवश इसी बीच रानी रत्नावती के सुपुत्र श्री प्रेमसिंह भी वहां पर आ गए। उनके मस्तक में तिलक तथा गले में तुलसी की माला थी। उन्होंने राजा को प्रणाम किया। पास के लोगों ने राजा को बताया कि राजकुमार प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनकर राजा ने राजकुमार को कहा- आ रे वैरागिन के बेटे। यह सुनकर राजकुमार के मन में बहुत दु:ख हुआ।

राजकुमार को अपमानित कर क्रोध में भरा हुआ राजा भीतर चला गया। लोगों द्वारा आमेर से आए पत्र के सम्बन्ध में जान कर कुंवर ने विचार किया कि अब वैरागी ही हमारी जाति है। अपनी माता जी का स्मरण कर, प्रेम-भक्ति के भावों को हृदय में लाकर वे तन-मन से सुखी हो गए। अपने निवास-स्थान पर जाकर उन्होंने अपनी माता जी को पत्र लिखा-यदि आपने अपने हृदय में भगवद्-भक्ति धारण की है तो उसे छोड़ना नहीं। आप अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी भक्ति-भाव की रक्षा करना।

श्री प्रेमसिंह ने पत्र तीव्रगामी दूतों द्वारा माता जी के समीप भेज दिया। रानी ने पत्र पढ़ते ही इत्र-फुलेल से भीगे बालों को मुंडवा दिया और वैरागिन बन गई। अब वे सन्त-महल में ही निवास करने लगीं। उन्होंने राजा का अन्न-धन लेना भी छोड़ दिया। इसके बाद अपने पुत्र प्रेम सिंह को पत्र लिखा- मैं मूंड-मुंडवाकर सच्ची वैरागिन बन गई हूँ और दिन-रात वैरागी सन्तों के बीच में ही रह रही हूँ।

श्री प्रेमसिंह जी ने पत्र पढ़ कर माथे से लगाया और उन्होंने कहा कि आज से उनकी गिनती भगवद्-दासों में हो गई है। उन्हें अपना यह दूसरा जन्म मान कर उल्लास हुआ। उन्होंने बहुत-सी सम्पत्ति दीन-दु:खियों में बाँट दी और उत्सव मनाया। किसी ने राजा से कहा, आज कुंवर प्रेमसिंह जी के यहां कोई उत्सव है। राजा ने कहा-कौन-सा यह नया उत्सव है, पता लगाओ। जब राजा के लोगों ने कुंवर से पूछा तो उन्होंने कहा- आज सचमुच हम वैरागिन के बेटा बन गए हैं। मेरी माता जी ने वैरागिन का वेष धारण कर लिया है। जब यह बात राजा ने सुनी तो उनके मन में बहुत ही दु:ख हुआ। क्रोधवश उन्होंने वैरभाव से श्री प्रेमसिंह पर चढ़ाई करके युद्ध करने की तैयारी कर ली। जब कुंवर को पता चला तो वे भी लड़ने-मरने के लिए तैय्यार हो गए।

पिता–पुत्र के बीच युद्ध की तैयारी को देख कर हितैषी लोगों ने राजा और कुंवर के बीच समझा–बुझा कर युद्ध शान्त करवा दिया। राजा माधवसिंह दिल्ली से आमेर आए तो लोगों ने रानी का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। अब राजा के मन में बहुत ही चिन्ता हो गई। राजा ने अपने महल में पहुँच कर अपने मन्त्रियों को बुलवाकर कहा– मेरी नाक तो कट ही गई, वह अब जुड़ नहीं सकती है, परन्तु उसमें से जो लगातार रक्त बह रहा है, उसे किसी प्रकार रोकिये। किसी भी प्रकार से रानी को मरवा डालना आवश्यक है। आप ऐसा उपाय सोचें कि रानी भी मर जाये और मेरे ऊपर हत्या का कलंक भी न लगे।

राजा के ऐसा कहने पर एक चापलूस मन्त्री ने कहा– अपने यहां जो पिंजरे में बंद शेर है, उसे रानी के सामने छोड़ दिया जाए। वह रानी को मार डालेगा। फिर उस शेर को दोबारा पिंजरे में डाल दिया जाए। इस मन्त्रणा को गुप्त रखा जाए। यह उपाय सब को अच्छा लगा। लोगों ने सिंह को छोड़ दिया। जब वह रानी की ओर आया तो दासी ने कहा–देखो श्रीनृसिंह जी आप की ओर आ रहे हैं, दर्शन कीजिए।

जब सिंह आया, उस समय रानी भगवान् की सेवा कर रहीं थीं। श्रीनृसिंह जी का समाचार सुनकर रानी ने दृष्टि घुमा कर उधर देखा। रानी ने प्रेमभाव से उसे पहचाना और उठकर उसका आदर–सत्कार किया– अहो धन्य है, आज मेरे बड़े भाग्य हैं, जो मेरे घर पर आप दर्शन देने के लिए आए। रानी की भावना सच्ची थी। अतः प्रभु ने उसी नृसिंह के रूप में अपना दर्शन करवा दिया। रानी ने फूलों की माला पहनाई और तिलक लगाया तथा आरती की। रानी की पूजा स्वीकार करके श्रीनृसिंह भगवान् रानी के घर से निकले और तत्काल उन्होंने रानी के शत्रुओं को मार डाला, जो कि उन्हें मरवाना चाहते थे।

जब राजा को रानी का यह समाचार मिला तो वह अत्यन्त नम्र होकर रानी के पास आया। रानी के भक्तिभाव से राजा की बुद्धि बदल गई। राजा ने रानी को साष्टांग प्रणाम किया। इसे देखकर दासी के मन में दया आ गई और उसने रानी को कहा कि आप राजा की ओर दृष्टि भर कर देखें। रानी ने कहा कि अब ये आंखें एक ओर ही लगी हैं, दूसरी ओर नहीं जा सकती हैं। राजा ने कहा कि अब मेरी सारी सम्पत्ति आपकी है, आप इसे स्वीकार करें। पर, रानी ने कहा– अब राज्य–सुख को आप ही भोगें, हमारी सम्पत्ति और सुख तो हमारे लाल जी ही हैं, ये ही हमें अब प्रिय लगते हैं।

रानी रत्नावती जी की स्व–रचित कोई रचना नहीं है।

**–साधु आश्रम, होशियारपुर।**

# हमारे संग्रह के कुछ साहित्यिक पत्र

—डॉ. सत्यव्रत वर्मा

ईमेल ने दिक्काल की प्राचीन धारणा को ध्वस्त कर आज के व्यस्त तथा घटना-संकुल जीवन में मनुष्य का कितना भी उपकार किया हो, उससे पत्र-लेखन की परम्परा लगभग उच्छिन्न हो गयी है, जिसने प्राचीन काल में ही भारत में कला का रूप धारण कर लिया था। यह परम्परा शायद उतनी ही प्राचीन है जितनी सभ्य मनुष्य जाति। पत्र मात्र सूचना-समाचार के आदान-प्रदान का माध्यम नहीं है, उसका सौष्ठव लेखक के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है और उसकी सामाजिक, साहित्यिक एवं भावात्मक भंगिमाएँ हैं, जिससे पत्र पाकर परम तोष अथवा सुख-दु:ख की अनुभूति होती है। प्राचीन काल में जहाँ पत्र-प्रेषण के लिए पक्षियों/कीटों तथा अमूर्त पदार्थों तक को प्रयुक्त किया जाता था, वहां आज, समस्त वैज्ञानिक चमत्कारों और परिवर्तनों के बावजूद, प्रतिदिन अधीरता से डाकिये की प्रतीक्षा की जाती है।

आरम्भ से ही अध्ययनशील तथा जिज्ञासु होने के नाते हमारा विद्वज्जनों, विशेषकर संस्कृत विद्वानों से सम्पर्क रहा है, जिसने हमारी साहित्यिक यात्रा में पाथेय का काम किया है। साहित्यिक जीवन के आरम्भिक वर्षों में हम जिन प्रतिष्ठित लेखकों की कृतियों का अध्ययन करते थे, उन्हें शंका-समाधान तथा मार्गदर्शन के लिए पत्र लिख कर मानसिक तोष की अनुभूति भी हमें होती थी। हमारा सौभाग्य, वे सरस्वती के मानस पुत्र प्राय: सदैव हमें आशीर्वाद से आप्लावित करते थे। साठ के दशक में जो दिग्गज पण्डित देश के साहित्यिक क्षितिज पर देदीप्यमान थे, उनमें आदरणीय डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल कई दृष्टियों से अनुपम तथा अतुल थे।

वासुदेवशरण जी ऋषि-परम्परा के सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र मनीषी थे। उन्होंने प्राचीन साहित्य के सांस्कृतिक अनुशीलन की जिस रोचनात्मक पद्धति का सूत्रपात किया था, आज भी उसका अप्रतिहत वर्चस्व है। उन दिनों उनके INDIA AS KNOWN TO PĀṆINI (पाणिनिकालीन भारतवर्ष) की चहुँ ओर दुन्दुभि बज रही थी। युवावस्था की दहलीज पर उस कालजयी ग्रन्थ का पारायण कर हम सम्मोहित-से हो गये थे। श्रद्धा और भावाकुलता के वशीभूत हो कर हमने आचार्य प्रवर को पत्र लिखा जिसमें पाणिनिकालीन भारत का मुक्तकण्ठ से गुणगान किया था। सच्चे मनीषी की भाँति अपने उत्तर में वासुदेवशरण जी ने 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' की तो चर्चा तक नहीं की किन्तु हमारा उत्साहवर्धन करते हुए लिखा– *''आप भारतीय संस्कृति और संस्कृत के सच्चे प्रेमी ज्ञात होते हैं। भारतीय संस्कृति का अर्थ विस्तृत और गम्भीर है। उसके निमित्त और भी अध्ययन करना चाहिये। मैंने इधर वेद पर कुछ पुस्तकें लिखी हैं,...... उन्हें*

*भी देखिये।''* उस महामनीषी के अपने हाथ से सन् 1963 में लिखा हुआ वह पत्ररत्न आज भी हमारे संग्रह की शोभा-वृद्धि कर रहा है।

''अभिनव पाणिनि'' उपनाम से विख्यात संस्कृत व्याकरण के अप्रतिम विद्वान् पण्डित चारुदेव शास्त्री हमारे पूज्य गुरु थे। सन् 1964 में विश्वसंस्कृतम् में हमारा 'केचित् पञ्चनदीयाः संस्कृतकवयः' लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें हमने गुरुवर की कृतियों के अतिरिक्त उनके सुपुत्र डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के बोधिसत्त्वचरितम् का भी विशद विवेचन किया था। गुरुदेव ने उस निबन्ध को पढ़ कर अपने स्नेह-सिक्त पत्र में जो हमें आशीर्वाद दिया था, वह हमारे लिये वरदान के समान था- ''*विश्वसंस्कृते ते निबन्धं प्रपठ्य यं हर्षप्रकर्षमापं स वाचामगोचरः। ध्रुवमचिरादेव सारस्वते पथि पूर्वप्रस्थितानप्यत्यासादयिष्यसि यशश्चादभ्रं वेत्स्यसि।....... कामये त्वं शास्त्र-शीलने नित्यं रतः प्रवाचां सत्तमः स्याः।''* 12-3-64 को दिल्ली से लिखा गया यह अमृतवर्षी पत्र हमारे संग्रह का अलंकार है। संग्रह में सुरक्षित गुरुदेव के आठ-दस अन्य पत्र भी हमारे लिये प्रेरणा के स्रोत हैं।

पं. चारुदेव शास्त्री के यशस्वी पुत्र डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के सैंकड़ों पत्र हमारे पास सुरक्षित हैं। शास्त्रिवर के साथ आरम्भ में हमारा समूचा पत्र-व्यवहार संस्कृत में होता है। देववाणी में लिखित उनके बीस-पच्चीस पत्र हमारे संग्रह में विद्यमान हैं। बात सन् 1962 की है। तब हम डी. ए. वी. कॉलेज, अमृतसर में थे। अमृतसर के संस्कृत पण्डित-मण्डल ने पंजाब के तत्कालीन राज्यपाल श्री नरहरि विष्णु गाडगिल, जो संस्कृत के सुधी विद्वान् भी थे, का हिन्दु कालेज के प्रांगण में सार्वजनिक अभिनन्दन किया था। उस अवसर पर उन्हें पं. मायाधारी शास्त्री द्वारा रचित ललित काव्यात्मक अभिनन्दनपत्र भेंट किया गया था। हमने उसकी एक प्रति डॉ. सत्यव्रत जी के अवलोकनार्थ भेजी। हमारे पत्र तथा अभिनन्दनकाव्य को पढ़ कर शास्त्री जी गद्‌गद हो गये।

17-10-1962 को ललित-प्रांजल गद्य में लिखित अपने पत्र में उन्होंने जो भावपूर्ण उद्‌गार प्रकट किये, वह सच्चे काव्य-पारखी के लिए ही सम्भव था-''*अत्रभवतां सुरभारत्यामेतादृशः प्रवाह इति विज्ञाय प्रमोमुदीमि। यत्सत्यं हर्षातिरेको न मे हृदि माति। पूज्यवर्य्यैः श्रीमाया-धारिशास्त्रिभिर्विरचितं श्रीगाडगिलाभिनन्दन-काव्यमप्यधीत्य केनाप्यानन्दातिरेकेण निर्भरोऽहं जातः। सर्वथाऽनवद्यमिदं काव्यं कवेः प्रौढिं काव्यकलायामभिव्यनक्ति। श्री शास्त्रिवर्य्याणां परिपचेलिमा उदात्ता गम्भीरा च वाचां गुम्फा प्रवाहिकाव्यौघहृद्या च शैली चित्तमावर्जयति समेषामपि विदुषाम्।''*

21.11.1966 के अपने पद्यबद्ध पत्र में, हमारे लेखों को पढ़ कर उन्होंने हमारे प्रति जो स्नेहपूर्ण भाव व्यक्त किये हैं, वे उनके औदार्य के परिचायक हैं-

*सूक्ष्मेक्षिका सहायेन निबद्धं भवता सता।*
*लेखद्वयं समासाद्य हर्षो मे सुमहानभूत्॥*
*अनेहसात्पेनैव विद्याध्ययनतत्पराः।*
*भवन्तो ह्यर्जयिष्यन्ति धवलं यश उदात्तम्॥*

यह सम्भवतः पिता-पुत्र की आशीर्वाद का ही फल था कि हम जीवन में निर्मल यश के भागी बने और डॉ. शास्त्री जी की साहित्यिक यात्रा के सहयोगी भी।

गाडगिलाभिनन्दन-काव्य के प्रणेता पं. मायाधारी शास्त्री अमृतसर के पीयूषपाणि वैद्य थे। वे आयुर्वेद में जितने सिद्धहस्त थे, काव्यकला में भी उतने ही निष्णात थे। अमृतसर में रहते हुए पांच वर्ष तक हमें उनका अटूट स्नेह मिला। यहाँ आने के पश्चात् भी उनके साथ बराबर सम्पर्क बना रहा। रुग्ण होने पर वे अपने पुत्र के पास कानपुर चले गये थे। कानपुर से 28.11.64 को लिखित पत्र में उन्होंने अपनी व्यथा को काव्यमय गद्य में इस प्रकार प्रकट किया- "*किं वच्मि, सुधोपमैर्भैषजैरसकृन् निवारितोऽपि दुर्विनीत-शठ-मधुमेहकासकफसहायो ज्वरहतको धृष्ट-नायक इव नाद्यापि मम कायलतिकां जहातीति विचित्रा विधिविलम्बना। क्षणेन निमीलन्ती समुन्मीलन्ती च निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेवाङ्ग यष्टिः तनिमानमातनोति।*"

पं. दौलतराम शास्त्री अमृतसर के एक अन्य सुधी विद्वान् थे। संस्कृत व्याकरण में उनकी गहरी पैठ थी। वृद्धावस्था में भी वे बहुत सक्रिय तथा कर्मठ थे। राज्यपाल के अभिनन्दन-समारोह के आयोजन में उनकी विशिष्ट भूमिका थी। 28-8-62 के पत्र में उन्होंने हमें अपने स्वास्थ्य और राज्यपाल की स्वीकृति की सूचना इस प्रकार दी- "*मासादारभ्य सर्वथा नीरुगप्युन्निद्ररुजा परीतोऽस्मि। सर्वमहः स्वस्थोऽपि निशि निशाचरेणामुना कदर्थीक्रिये। अस्तु, सहिष्येऽस्यागः।.......... राज्यपालेनास्मत्प्रार्थनाङ्गीकृतैव, तिथिनिर्देशश्चिरायते।*"

1958 में 'सरस्वती' में पं. बालकृष्ण भट्ट के संस्मरण प्रकाशित हो रहे थे। लेखक थे उन्हीं के शिष्य पं. व्रजमोहन व्यास, जो प्रयाग की अनूठी विभूति थे। प्रशासनिक अधिकारी होते हुए भी वे संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ तथा उर्दू काव्य में पारंगत थे। व्यास जी की शैली इतनी रोचक तथा मोहक थी कि पाठक संस्मरण पढ़ता-पढ़ता सम्मोहित-सा हो जाता था। इतने जीवन्त तथा मार्मिक संस्मरण अन्यत्र शायद ही मिलें। संस्मरणों के प्रथम दो-तीन अंक हमें उपलब्ध नहीं हुए। हमने व्यास जी को पत्र द्वारा अपनी विवशता बताई और उनकी शैली की जी-भर कर प्रशंसा की। तब तक संस्मरण पुस्तकाकार में प्रकाशित हो चुके थे। व्यास जी ने कृपापूर्वक एक प्रति हमारे पास भेजी। उनके हस्ताक्षर-सहित वह प्रति हमारे संग्रह का शृङ्गार है।

इसके बाद 'सरस्वती' में व्यास जी की 'मेरा कच्चा चिट्ठा' शीर्षक अत्यन्त रोचक लेख माला का प्रकाशन आरम्भ हुआ। उसके एक लेख में वे अभिज्ञानशाकुन्तल के श्लोकार्ध- *लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्*-को भूलवश भवभूति का लिख गये। हमने उनका इस ओर ध्यान आकृष्ट करने की धृष्टता की। उन्होंने बहुत नम्रता से लिखा - "*यह दूसरी बार मुझ पर चपत पड़ी । जब मैं सरस्वती में पण्डित बालकृष्ण भट्ट के संस्मरण लिख रहा था तो 'पर्यंकग्रन्थिबन्ध'.........को मैंने कालिदास के नाम मढ दिया। केरल से एक इसाई प्राध्यापक ने मेरे कान पकड़े और इसी प्रकार चतुर्वेदी जी को*

*लिखा। यद्यपि मैं संस्कृत का पण्डित नहीं हूँ पर संस्कृत का प्रेमी हूँ। स्मरणशक्ति मेरी पैतृक सम्पत्ति है। 1909 में जब मैं बी. ए. में था उस समय का पढ़ा हुआ 'उत्तररामचरित' आद्योपान्त मुझे अब तक कण्ठस्थ है।''* इससे व्यास जी की शैली की जीवन्तता का पर्याप्त आभास मिलता है। उनका हस्तलेख परम्परागत पण्डितों जैसा अतीव चित्ताकर्षक तथा सुघड़ था। व्यास जी के तीन-चार पत्र हमारे पास विद्यमान हैं।

पण्डित व्रजमोहन व्यास के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्र श्री रामचन्द्र व्यास के साथ भी हम पत्र-व्यवहार करते रहे। रामचन्द्र जी का लेखन हूबहू पिताश्री के लेखन की प्रतिलिपि थी-वही लम्बा हस्तलेख, वही जीवन्तता, वही आंचलिक शब्दों, संस्कृत श्लोकों और उर्दू के अशआर का कलात्मक प्रयोग, वही चुटीली भाषा। 10-10-1976 के उनके पत्र से ज्ञात हुआ कि 'मेरा कच्चा चिट्ठा' तब तक भी प्रकाशित नहीं हुआ था। उनके पिताश्री ने कुमार दास के जानकी-हरणम् का सानुवाद सम्पादन किया था, किन्तु अब वह अप्राप्य है। पं. रामचन्द्र जी ने हमारे पत्र-लेखन की जो भूरि-भूरि प्रशंसा की थी, वह तो उनकी उदारता ही थी।

उन दिनों देश के उच्चकोटि के विद्वान् और कवि अपनी बहुमूल्य रचनाओं से 'सरस्वती' का शृंगार कर रहे थे। श्री कस्तूरमल बांठिया के खोजपूर्ण तथा ज्ञानवर्द्धक लेखों ने हमें अधिकाधिक अध्ययन-अनुसन्धान के लिये प्रेरित किया। बांठिया जी अधिकतर जैनसाहित्य पर लिखते थे। हमारे एक पत्र के उत्तर में उन्होंने जो संक्षिप्त आत्मपरिचय दिया तथा हमें इतिकर्त्तव्यता का बोध करवाया, वह उनके उदात्त साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों तथा मान्यताओं का परिचायक है।

*''मेरा प्रधान विषय व्यापार और अर्थशास्त्र था जिन विषयों पर मैंने सन् 1918 में लिखना प्रारम्भ किया था। मेरे प्रथम लेख को स्व. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित कर मुझे प्रोत्साहन दिया, तभी से मैं लिखने लगा पर व्यवसाय रूप से नहीं।......'हिन्दी बही खाता' नामक मेरी पुस्तक जो सं. 1975 में पहले-पहल प्रकाशित हुई, ने ही मुझे कौटिल्य अर्थशास्त्र में इस विद्या के सूत्रों की खोज को प्रेरित किया। मैंने सदा हिन्दी में ही लिखा। अंग्रेजी में लिखने का उत्साह इसलिए नहीं हुआ कि हिन्दी भाषा की समृद्धि में फिर सहयोग देने से कदाचित् मैं विरक्त हो जाता।......आज जैसे मनीषियों को ही कमर कस कर आगे आना होगा। ज्ञान बेचने वालों ने कभी संस्कृति नहीं बनाई। खेद यही है कि आज ज्ञान बेचने वाले ही रह गये हैं।''*

-7/34, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर (राज.)

# बन गई गीत से ग़ज़ल

–श्री बाबूलाल शर्मा 'प्रेम'

**1**

ढह गए धूप के महल देखो
साँझ की अब चहल-पहल देखो,
गुनगुनाते रहे जिसे दिन भर
बन गई गीत से ग़ज़ल देखो।

आँसुओं का हिसाब रखने को
चाक दामन करे पहल देखो,
वह बरसते हैं रूप के बादल
और वह सूखती फसल देखो।

देखना है तो आँख भर देखो,
यूँ न पहलू बदल-बदल देखो,
रंग देखा बहुत जमाने का
कभी अपने को एक पल देखो।

**2**

कभी मैं रहके भी घर पर नहीं हूँ
जहाँ मैं हूँ वहाँ अकसर नहीं हूँ,
किसी को ठेस मुझसे क्यों लगेगी
किसी की राह का पत्थर नहीं हूँ।

किसी के प्यार की पहचान हूँ मैं
किसी की पीर का मंजर नहीं हूँ,
कोई दर है खुला मेरे लिए भी
ये क्या कम है कि मैं बेघर नहीं हूँ।

तुम्हारे दर्द का अहसास भी हूँ
महज अपनी व्यथा का स्वर नहीं हूँ,
ज़हर संसार का पी लूँ अकेले
मगर मज़बूर हूँ शंकर नहीं हूँ।

– इंद्रपुरी, पो. मानसनगर, लखनऊ-23

# मलूकदास के काव्य में प्रतीक-योजना

–डॉ. मुकेश कुमार अरोड़ा

भाषा जब संवेदनात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में अपने को कुछ असमर्थ-सा पाती है तब एक ऐसी कलात्मक युक्ति का अन्वेषण किया जाता है जो अमूर्त्त भावों को रूप प्रदान करती है। इन्हीं अमूर्त्त भावों को जीवंतता प्रदान करते हैं ये 'प्रतीक'। "प्रत्येक प्रतीक अपने भीतर किसी व्यक्ति, समाज तथा देश की व्यापक संस्कृति भी समेटे हुए रहता है। विशेष परिस्थितियों की परिचितता प्रतीक को रूप प्रदान करती है.......वास्तव में प्रतीक जीवन प्रवाह में डूबकर ही नए अर्थ प्राप्त करते हैं।"[1] इन नए अर्थों का उद्घाटन हिन्दी संत-साहित्य में बहुतेरा देखा जा सकता है। एक तरह से कहा जाए कि इन निर्गुणपन्थी सन्तों ने प्रतीकों की ही भाषा में अपनी बात कही है।

"प्रतीकात्मक दृष्टि से संत-साहित्य एक ऐसा अथाह सागर है कि उसकी गहराइयों में उतर कर सहृदय जितने नीचे तक पहुँचता है, उतने ही नवीन और अननुभूत रत्नों को प्राप्त कर लेता है। इन प्रतीक रत्नों में भाषा, भाव और रूप की दृष्टि से इतनी विचित्रता और विविधता है कि प्रत्येक रत्न एक दूसरे से अधिक चमकीला, प्रभावशाली दीख पड़ता है।"[2] ये प्रवृत्तियाँ मलूकदास जी के काव्य में सहज ही देखने को मिल जाती हैं। सहज इसलिए कि वे सच्चे अर्थों में भक्त और साधक थे। उनकी सहजता की बानगी इस दोहे, जिसे भ्रमवश आलसियों का मूल मंत्र भी कहा जाता है, में पूर्णत: दीख पड़ती है–

**अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।**
**दास मलूका कह गए, सबके दाता राम॥**[3]

'सर्वधर्मान् परित्यज्य' का पूर्ण भाव इनके काव्य में स्थान-स्थान पर दीख पड़ता है। जो अपनी जीवन नौका को प्रभु के सहारे छोड़ देते हैं, वे मस्ती में इसी प्रकार गा उठते हैं–

**नैया मेरी नीकै चलन लागी।**
**आँधी मेंह तनिक नहिं डोलौ साहु चढ़े बड़भागी॥**
X X X X X X X
**या नैया के अजब कथा कोई बिरला केवट जानै॥**[4]

1. डॉ. देवेन्द्र आर्य-हिन्दी संत काव्य में प्रतीक-विधान-इन्दु प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण-1971, पृष्ठ-23.
2. वही, पृष्ठ-285.
3. वही, पृष्ठ-328.
4. मलूकदास जी की बानी, सद्गुरू की महिमा, शब्द 6, पृष्ठ-3.

मलूकदास जी की वाणी में भक्ति का उद्दाम वेग है, जन सामान्य को सांसारिक माया जाल से बचाकर अमरलोक में ले जाने की तीव्र लालसा है। इसलिए प्रतीकात्मक चित्रण के प्रति उतना आग्रह नहीं दीख पड़ता, फिर भी प्रतीकात्मक दृष्टि से यदि इनकी वाणी का विश्लेषण करें तो निराशा हाथ नहीं लगेगी। प्रायः सभी सन्तों ने अपने काव्य में 'मन को जीतने' की बात कही है। मलूकदास भी इस बात से इन्कार नहीं करते। उनके अनुसार "मन के जीते जीत है", इसे जीते बिना सकल साधन क्लेश ही हैं–

**कोई जीति सकै नहीं, यह मन जैसे देव।**
**याके जीते जीत है, अब मैं पायो भेव॥**
**मन जीते बिन जो करै,साधन सकल कलेस॥**[5]

इस प्रकार मन को संयमित कर ब्रह्म की ओर लगाने का प्रत्येक सन्त ने प्रयत्न किया है। अतः मलूकदास का भी प्रयत्न सार्थक ही है।

अन्य संतों के समान मलूकदास ने भी आत्मा को वधू रूप में और ब्रह्म को पति रूप में चित्रित किया है। उनका मानना है कि आत्मीय भाव से समर्पित होकर विरहाग्नि द्वारा ही मनुष्य मन का कालुष्य दूर किया जाना परम आवश्यक है। वैसे भी विरह की अग्निपरीक्षा से गुजर कर ही वधू सदा सोहागिन हो सकती है–

**सदा सोहागिन नारि सो जाके राम भतारा।**[6]

उस 'साहेब रहमाना' से प्रीति जुड़ जाने पर व्याकुल आत्मा उसके 'दीदार' को व्याकुल हो उठती है, सारा धर्म, कर्म, पूजा, पाठ, ध्यान धारणा उस एक के 'दीदार' में डूब गयी है, बस आत्मा हर घड़ी उसी को देखना चाहती है–

**तेरा मैं दीदार दिवाना।**
**घड़ी घड़ी तुझे देखा चाहूँ,**
**सुन साहेब रहमाना॥**[7]

एक बार दीदार होने पर जोगिया बिछुड़ जाए तो फिर भला प्यासी आत्मा कैसे धैर्य धारण करे? वह तो निसदिन पीव पीव ही रटती रहती है, अब तो उस '**जोगिया बिन रह्यो न जाय**'[8]। वह 'जालिम पीव' न जाने क्या करेगा? हृदय थर-थर काँप रहा है–

**रात न आवै नींदड़ी, थर थर कांपे जीव।**
**ना जानूँ क्या करेगा, जालिम मेरा जीव॥**[9]

मलूक दास ने आत्मा के स्वरूप को अधिक विस्तृत रूप में चित्रित किया है, वह लिखते हैं–

---

5. मलूक बानी, मन, साखी 68, पृष्ठ-38.
6. मलूकदास जी की बानी, सद्गुरू की महिमा, शब्द 5, पृष्ठ-3.
7. वही, प्रेम, शब्द 2, पृष्ठ-6.
8. वही, प्रेम, शब्द 1, पृष्ठ-6.
9. वही, प्रेम, साखी 30, पृष्ठ-35.

**हम हीं तरवर कीट पतंगा।**
**हम हीं दुर्गा हम हीं गंगा।**
**हम हीं सूरज हम हीं चन्दा।**
**हम हीं भये नन्द के नन्दा॥**
X X X X X
**हम ही जियावैं हम ही मारैं।**
**हम हीं बोरैं हम हीं तारै।**
**जहाँ तहाँ सब जोति हमारी।**
**हमहिं पुरूष हमहीं है नारी॥**[10]

तात्त्विक दृष्टि से यदि हम उनकी वाणी का अध्ययन करें, तो हमें उनके भक्तिपरक विचारसूत्रों का पता चलता है कि उन्होंने ब्रह्म हेतु राम, हरि, गोपाल, गोविन्द, निरंजन, जोगिया, साहेब, रहमाना, परमतत्त्व आदि नाना प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग करते हुए उसे एक ही माना है-

**है हजूर नहिं दूर, हमा-जा भरपूर।**
**जाहिरा जहान, जा का जहूर पुर नूर॥**[11]

वह ब्रह्म - "निरंजन, निरंकार अविगति पुरूष अलेख" है[12], वही सर्वान्तर्यामी है।[13]

'माया' के प्रति भी मलूक जी के प्रतीक बड़े सटीक एवं व्यावहारिक रुख रखते हैं। उनका मानना है कि माया ही ब्रह्म और जीवन के बीच भ्रम की दीवार खड़ी करती है। राम नाम के द्वारा ही इसे नष्ट किया जा सकता है। हरि की इस माया के कठिन पाश से कौन बच सकता है।[14] वे लिखते हैं-

**माया काली नागिनी जिन**
**डसिया सब संसार हो।**[15]

अन्यत्र वे लिखते हैं-

**माया मिसरी की छुरी, मत कोई पतियाय।**
**नारी घोंटी अमल की, अमली सब संसार॥**[16]

जगत् के प्रति भी मलूक जी के विचार काफी विचारणीय हैं, वे इसे भ्रम, व्यर्थ और अस्थिर मानते हैं। उनके लिए यह संसार प्रलयंकारी भवसागर है, इसमें वही डूबने से बच सकता है, जिस पर परमात्मा की कृपा हो।

**यह संसार बड़ों भौसागर, प्रलयकाल ते भारी।**
**बूड़त ते या सोई बाचै, जेहि राखै करतारी॥**[17]

प्रतीकों की अनिवार्यता या उनका प्रयोग अपने आप में ही एक नया अर्थ ओढ़े हुए होती है क्योंकि इनके प्रयोग से ही कई ऐसे रहस्यात्मक

10. मलूकदास जी की बानी, मिश्रित 2, पृष्ठ-23-24.
11. वही, उपदेश, शब्द 11, पृष्ठ 20.
12. वही, गुप्त की महिमा, साखी 39, पृष्ठ-35.
13. वही, साखी 48, 49, 50, पृष्ठ-36.
14. वही, उपदेश 3, पृष्ठ-16.
15. वही, मन और माया के चरित्र 1, पृष्ठ-9.
16. वही, माया, साखी 71, 73, 74, पृष्ठ-38, 39.
17. वही, शब्द 3, पृष्ठ-17.

बातों की तहों तक पहुँचा जा सकता है जिसे आम समझ नहीं सकता। डॉ. बड़थ्वाल ने बड़े ही सुन्दर ढंग से कहा है कि प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग "आध्यात्मिक अनुभव की अनिर्वचनीयता के कारण और.......अर्थ को जानबूझकर छिपाने के लिए भी हुआ है जिससे आध्यात्मिक मार्ग के रहस्यों का पता अयोग्य व्यक्तियों को न लगने पाये अथवा यदि बाइबिल के शब्दों में कहा जाए तो मोती के दाने सूअरों के आगे न बिखेर दिए जाएँ।"[18]

मलूकदास ने जहाँ एक ओर वैदिक परम्परा से प्राप्त वृक्ष प्रतीक का सूक्ष्म चित्रण किया है, सिद्धपरम्परा से प्राप्त 'सहज' का परमपद के रूप में प्रयोग किया है, वहाँ दूसरी ओर 'साहेब रहमाना' के विरह में उनकी आत्मा व्याकुल हो सकती है, निर्गुण रूप में वह ब्रह्म संसार के कण-कण में व्याप्त है, आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है और अंत में उसी में मिल जाता है, अद्वैतवाद की इस विचारधारा के मलूकदास में स्पष्ट दर्शन होते हैं।

अस्तु, मलूक दास जी भक्त हैं, भक्ति से उनको काम है, सब कुछ भगवदर्पण कर निश्चिन्त हो चुके हैं, आत्मसमर्पण की यही तीव्र भावना उनके काव्य का प्राण है। उनके काव्य में प्रतीकों का प्रयोग अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। इसका कारण स्पष्ट है कि संत कवि साधना को अपने जीवन में प्रमुख स्थान देते थे। उनका लक्ष्य कविता न होकर ज्ञान और भक्ति है। अतः मलूकदास जी की वाणी प्रतीक विधान की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है।

**–हिन्दी विभाग अध्यक्ष व शोध केन्द्र संयोजक,**
**एस. सी. डी., राजकीय महाविद्यालय, लुधियाना।**

---

18. डॉ. पीताम्बर बड़थ्वाल-हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ-409.

# दयानन्द दर्शन और यथार्थ जीवन

–डॉ. सरिता भटनागर

धर्म और समाज में नवजागरण का शंख फूंकने वाले तथा परम्परा और बौद्धिकता का समन्वय करने वाले स्वामी दयानन्द ने वेद, स्मृति एवं दर्शन-ग्रन्थों के आधार पर हमें एक स्वस्थ विचारधारा प्रदान की है जिसे दयानन्ददर्शन कहा जा सकता है। स्वामी दयानन्द ने अपना कोई नवीन दार्शनिक या धार्मिक सम्प्रदाय नहीं चलाया है, अपितु उन्होंने वेदादि शास्त्रों का आधार लेकर तथा भारतीय दर्शन के विविध प्रस्थानों का समन्वय करके जो दार्शनिक मन्तव्य निर्धारित किए हैं उन्हें ही दयानन्द-दर्शन कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में स्वामी जी के विचारों व भावों के संकलित रूप को दयानन्द-दर्शन नाम दिया गया है। स्वामी दयानन्द ने अपने समय में वैदिक संस्कृति को उपद्रवाभिरत पाया। उन उपद्रवों का निराकरण तथा प्राची कीर्तिकौमुदी को पुनः प्रकाशमयी करने में कितने ही भाव और विचार थे जो उनके प्रयत्न के निमित्त अथवा परिणाम बने। उन भावों और विचारों के समुच्चय को दयानन्द-दर्शन भी कह सकते हैं।

यद्यपि स्वामी दयानन्द को केवल धर्म-सुधारक एवं समाज-सुधारक के रूप में जाना जाता है तथा इनका धर्म-विषयक तथा समाज-विषयक मन्तव्य ही विशद रूप से विवेचनीय है तथापि स्वामी जी ने विविध पद्धतियों से दार्शनिक-तत्त्वों का निरूपण किया है। उनका दार्शनिक-विवेचन किसी समुदायविशेष का अनुसरण नहीं करता। वह समुदाय-निरपेक्ष है तथा सम्पूर्ण मानव-जीवन से सम्बन्ध रखता है। वे अपने मन्तव्यों का आधार वेद को मानते हैं। उनके वेदभाष्य में स्थान-स्थान पर दर्शन के तत्वों का निर्देश है। यदि हम उनके समूचे जीवन पर दृष्टिपात करें तो इन विषयों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

अन्य भारतीय दर्शनों के समान ही स्वामी दयानन्द जगत् में तीन तत्त्व स्वीकार करते हैं–

1. जड़ जगत् 2. जीव 3. परमेश्वर। जगत् के निर्माण में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है? इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी दयानन्द कहते हैं– जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है, वैसे ही परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

स्वामी दयानन्द के मत में यह जगत् सुख-दुःखमय है। जगत् को केवल दुःखात्मक नहीं कहा जा सकता। स्वामी जी का कहना है कि **जो सब दुःख ही हो और सुख कुछ भी न हो तो सुख की अपेक्षा के बिना दुःख सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे रात्रि की अपेक्षा से दिन और दिन**

**की अपेक्षा से रात्रि होती है। इसलिए सब दु:ख मानना ठीक नहीं।** स्वामी दयानन्द की दृष्टि में विषयासक्ति दु:खों का हेतु है। जो शरीर रहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख-दु:ख का स्पर्श नहीं होता।

स्वामी जी का मानना है कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है। वे जीव के कर्मों को पहले से ही ईश्वर द्वारा निर्धारित नहीं मानते। वे तो पुरुषार्थ को ही भाग्य का निमित्त मानते हैं और पुरुष को अपने भाग्य का निर्माता मानते हैं। जीव वस्तुत: कर्ता है। वही अपने लक्ष्य तक स्वयं पहुँच सकता है। जीवन अपने कर्मों से ही अच्छा या बुरा बनता है। ईश्वर जीव का साक्षी होकर प्रत्येक प्रकार के कर्मों के प्रति अन्दर के ज्ञान को प्रकाशित करता है। पुरुषार्थ की सिद्धि ही मानव जीवन का उद्देश्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में भी परम पुरुषार्थ मोक्ष है तथा इसकी प्राप्ति होना ही प्रत्येक दर्शन या जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

यदि दयानन्द-दर्शन की बात की जाये तो उन्होंने प्रकृति, जीव और ईश्वर तीनों का अलग-अलग अस्तित्व माना है। ब्रह्मज्ञान पर बल दिया है। यज्ञों के महत्त्व को समझा है। उनके अनुसार ईश्वर का ज्ञान नित्य है।

महर्षि दयानन्द ने यथार्थ जीवन के लिए जो कुछ भी कहा उसके लिए उन्हें समाज को समझने में देर न लगी क्योंकि जिसने वेद के रहस्य को इतनी सुगमता से जान लिया हो, उसके लिए यह कोई कठिन कार्य नहीं था। उनकी शिक्षाएँ अत्यन्त उपयोगी हैं। उन्होंने आयुर्वेद, धनुर्वेद, युद्धविद्या, शिल्पविद्या तथा ललित कलाओं एवं नारी की दशा, शिक्षा-पद्धति, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि जीवन के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला है। उनका दृष्टिकोण वेदशास्त्रों पर आधारित होते हुए भी सुधारवादी है। उनकी शिक्षापद्धति में सदाचार, शिष्टाचार जैसे सद्गुणों को तथा राष्ट्रीय-भावना, स्वदेश-प्रेम, समाज-सुधार एवं लोकोपकार जैसे सद्भावों को महत्व दिया गया है। स्वामी जी का दृष्टिकोण अत्यन्त विशाल है। वह एक ग्राम, नगर, जाति या सम्प्रदाय अथवा राष्ट्र तक सीमित नहीं है, अपितु सकल संसार, विश्व या मानव सभी उसके अन्तर्गत है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

इस प्रकार **युगद्रष्टा स्वामी दयानन्द** ने समय की आवश्यकतानुसार ऐसा जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है जिससे केवल आर्यसमाज ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव समाज उनका ऋणी रहेगा।

**– प्रभारी, संस्कृत विभाग, हिन्दू महाविद्यालय, मुरादाबाद।**

# हरियाणवी भाषा में व्यंग्य-पटुता

–डॉ. रवीन्द्र कुमार

हरियाणवी भाषा में व्यंग्य का प्रभुत्व है क्योंकि व्यंग्य में सत्यनिहित होता है। व्यंग्य सच्चाई का उद्घाटन करता है। इसमें विरोध की भावना विद्यमान रहती है। परिवर्तन के उद्देश्य से इस का जन्म होता है। अत: आक्रोश एवं चिन्तन इस के मूल तत्त्व हैं। इसे हास्य के साथ जोड़ने का प्रयास किया जाता है। आजकल व्यंग्य लोकप्रिय होता जा रहा है। अब तो इस का प्रयोग विधा के रूप में भी हो रहा है। अब अनेक कृतियाँ इसी विधा में लिखी जा रही हैं।

हरियाणा की भाषा में व्यंग्य का पुट सदा से ही सुनने में आता है। परन्तु जब से यहाँ की बोली को भाषा का दर्जा मिला है तब से विशेष रूप से लोगों की दृष्टि इस ओर गई है। सर्वप्रथम रोहतक के गांव गुडियानी में जन्में बाबू बालमुकन्द गुप्त की बाणी में रचित साहित्य में व्यंग्य का पुट प्राप्त हुआ है। उनके व्यंग्य 1905 ई. में 'दैनिक भारत-मित्र' पत्र में 'शिवशम्भु के चिट्ठे' नामक शीर्षक से संग्रहीत हुआ। इस में लार्ड कर्जन के शासन-काल की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का पर्दाफास किया गया है। इस की भाषा में चाहे मजाक प्रतीत होता है परन्तु यहां आंतरिक रूप से तीखी संवेदना है जोकि अंग्रेजी-शासन की नीतियों को उद्घाटित करती हैं। इनकी भाषा के स्वरों में स्वदेश प्रेम की बौछार है।

व्यंग्य के अन्य उदाहरण हरियाणवी कवि एवं लेखक श्री माधवप्रसाद मिश्र की रचनाओं में अवलोकनीय हैं। मिश्र भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे। उन्होंने समाज की असंगतियों को देख कर आक्रोश में व्यंग्यपरक रचनाओं का सृजन किया और अपने निबन्धों, लेखों, कहानियों और कविताओं में निर्भीकता से व्यंग्यों की अभिव्यक्ति की है और व्यज्य रूप से निष्पक्ष और निस्संकोच रूप से सभी पर प्रहार किये। जो भारतीय अंग्रेजों की चाटुकारिता करते थे, ऐसे लोगों पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने 'यक्ष-युधिष्ठिर सम्वाद' की रचना की थी। इतना ही नहीं उन्होंने सामाजिक दृष्टि से भी मधुर एवं तिक्त व्यंग्य किये हैं। इन व्यंग्यों द्वारा उन्होंने लोगों को जागृत कर के समाजसुधार का प्रयत्न किया।

इसी प्रकार हरियाणवी लेखक विश्वम्भर नाथ कौशिक जी, विजयानन्द दुबे के नाम से दुबे जी की चिट्ठी लिखा करते थे जो बहुत व्यंग्यपूर्ण और मारक होती थी। हरियाणा के इन व्यंग्यकार लेखकों ने राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं पर सटीक व्यंग्य लिखे हैं। इन्होंने अंग्रेजों के समय की भारतीय दुर्दशा पर प्रहार करते हुये सुधार हेतु व्यंग्यात्मक निबन्ध लिखे हैं।

आधुनिक युग में हरियाणा के जिन साहित्यकारों ने अपनी भाषा में हास्य-व्यंग्य को

प्रमुख रूप से अपनाया है, उन में ओमप्रकाश आदित्य, जैमिनी हरियाणवी और अतहड बीकानेरी के नाम लिये जा सकते हैं। इन का काव्य तीन त्रिशंकु मुख्य है। ओमप्रकाश आदित्य की भाषा में व्यंग्य की आक्रामकता और राजनीतिक व्यंग्य की प्रखरता देखी जा सकती है। इन्होंने नेता और उनकी नीति पर आक्रोशपूर्ण प्रहार किये हैं।

ताऊ हरियाणवी ने 'ताऊ के तीर' अपने संग्रह में व्यंग्य की अच्छी भरमार की है। उन्होंने स्वयं अपने काव्य को व्यंग्य-काव्य कहा है। इसी प्रकार योगेन्द्र मौद्गिल पानीपती के काव्यों में भी व्यंग्य भरपूर है। माधव कौशिक की ग़ज़लों में भी व्यंग्य की सुन्दर छटा देखने को मिलती है। कुछ लेखकों ने राजनैतिक और सामाजिक विकृतियों को नाटकीय रचना से भी प्रकट किया है।

डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा का नाम इस दिशा में बड़े सम्मान के साथ लिया जा सकता है। वे एक स्थान पर लिखते हैं कि- 'जब समाज में मूल्यों की हत्या होती है और विसंगतियाँ सिर उठाती हैं तब व्यंग्य लेखन के लिए उपयुक्त माहौल मिलता है।' उनके व्यंग्य संकलनों में राजनैतिक और सामाजिक विकृतियों पर खूब प्रहार हुये हैं। इन व्यंग्यकारों में डॉ. नन्दलाल मेहता, जगदीश कौशिक हरिमेहता, डॉ. बैजनाथ सिंघल, विनोद कश्यप और काजमी आदि मुख्य हैं।

डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा ने व्यंग्य के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्होंने दो व्यंग्य-संग्रह 'चमचा पुराण' और 'चिट्ठी मिस स्वीटी' में व्यंग्य द्वारा मानव-जीवन को कुपथ से हटाकर सुपथ पर लाने का प्रयत्न किया है। इनकी व्यंग्य रचनाओं में आदर्श से नि:सृत यथार्थ की अभिव्यक्ति है। डॉ. मधुसूधन पाटिल के व्यंग्यों में देश-प्रेम और सामाजिक ढोंग के प्रति नफरत के बीज बोये गये हैं। इन में आक्रोश के तत्त्व व्याप्त हैं।

कैथल के पवन चौधरी व्यंग्यकारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन्होंने चार व्यंग्य-संग्रहों की रचना की है। इन की व्यंग्य रचनाओं में न्यायालय की अन्यायपूर्ण स्थितियों को उजागर करने का प्रयत्न किया है। वहाँ की विसंगतियों को उद्घाटित किया है। इसी प्रकार हिसार के सरूप सैलानी ने अपनी व्यंग्य रचना 'बेनकाब' में कचहरी की विकृतियों को प्रकट किया है।

व्यंग्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। धार्मिक स्थलों में होने वाले छल-कपट, कूटनीति और धर्म के नाम पर फैलाये गये संत्रासों पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है-

**धर्मालय के आंगन में बो दी संगीने,**
**धर्महंस को काग बनाया कूटनीति का,**
**मानवता के ममता से भीगे मानव पर,**
**छितरा दीं शंकित छायाएँ संत्रासों की।**

प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था में आम आदमी विवश और बेबस है। जनसेवा के बहाने राजनेता उन का शोषण कर रहे हैं। यहाँ संकेत प्रस्तुत है-

**एक सिरे पर जुटे जनसेवी नेता**
**मन बांबी में स्वार्थ भाव के अजगर पाले।**
**सिरा दूसरा थामे थी हलचल जनता की,**
**रेंग रहे थे रग-रग में कीड़े लिप्सा के।**

इस प्रकार स्वार्थी मनोवृत्ति और चुनाव के अवसर पर होने वाली धांधलियों को व्यक्त किया गया है। वर्तमान समय में रिश्ते-नाते फीके पड़ गये हैं। आज हमारी परम्पराएँ, संस्कृति, हमारे जीवन-मूल्य और विरासतें पूरी तरह से बदल गई हैं। कवि लिखता है-

**इस जंगल में आग लगी है बरगद जलते हैं,**
**भुने कबूतर शाखाओं से हैं टप टप-चू पड़ते,**
**हवनकुण्ड में लपट उठे ज्यों, यों समिधा बनते,**
**अण्डे बच्चे नहीं बचेंगे नीड़ सुलगते हैं।**

अब दिन-प्रतिदिन लोगों के दिनमान और चरित्र बदल रहे हैं-

**जहां कभी जमती थी पांचों की खैनी**
**कहां गये बन्धु नीम पीपल पुश्तैनी, गये दिनों**
**गुजर गई, पुरखों की देहरी, चौखट पर बैठी है,**
**बूढ़ी दोपहरी, पूछे अब कौन यहाँ चना चबैनी।**

माधव कौशिक की ग़ज़लों में व्यंग्य का अच्छा पुट देखा जा सकता है। जिन में भारतीय संस्कृति का लुप्त होना और आदमी की गुम होती अस्मिता, गांवों का बदलता स्वरूप और चरित्र के ह्रास का कटुतम यथार्थ चित्रित है। एक स्थान पर वे लिखते हैं-

**छोटेपन का ओछे मन का कुंठित महानगर,**
**भारी भरकम महल दुमहले और मीनारें ऊँची,**
**फुटपाथों पर सोने वाली इज्जत नंगी बूची,**
**दिनभर चिमनी जहर उगलती नाजायज सन्तानें पलतीं**
**बूंद-बूंद कर पी लेता है शोणित महानगर।**

इस प्रकार भाषा में व्यंग्य का बोलबाला है। परम्परा की नवीनता का एक सुन्दर उदाहरण देखें। कवि कहता है कि-

**पलकों की खिड़की से झांके, कुछ कस्तूरी वादे**
**बिना बैन कह गये कहानी नयना सीधे सीधे।**

यह व्यंग्य केवल साहित्य में ही नहीं अपितु व्यंग्य तो हरियाणवी भाषा का शृंगार साधन है। जाति, बिरादरी की कहानियों में एक जाति दूसरी जाति पर व्यंग्य कसती है। उन के भोजन, रीति-रिवाज़ तथा रहन-सहन पर परस्पर बातचीत में भी व्यंग्य कसा जाता है।

हरियाणा साहित्य अकादमी की पत्रिका 'हरिगंधा' में भी व्यंग्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। समाचारपत्रों में भी व्यंग्य प्रकाशित होते रहते हैं। 'ताऊ बोल्या' शीर्षक इसी प्रकार की व्यंग्यछटा लिये हुए है। अब तो साहित्यकारों ने व्यंग्य नाटक, उपन्यास और आलोचना भी लिखना प्रारम्भ कर दिया है। हरियाणा में परम्परा और प्रवृत्ति की दृष्टि से व्यंग्यलेखन खूब हो रहा है और आगे इस दिशा में और जागृति आयेगी। यह मुख्यधारा के रूप में उजागर होगा।

**-3154/13 शिव कालोनी, रादौर, जिला यमुनानगर, हरियाणा।**

# प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य की प्रासंगिकता

**–श्री विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद'**

बाल–कल्याण में शिक्षा एवं साहित्य की भूमिका निर्विवाद है। जिस प्रकार बच्चों को संस्कार संपन्न बनाने में कविता, नाटक, लेख, निबंध आदि की महती भूमिका है, उसी प्रकार कथा-साहित्य का विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण योगदान है। आधुनिक कहानियाँ तो बच्चों का मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन करती ही हैं, प्राचीन भारतीय कथाएँ भी बच्चों को सद्‌गुण संपन्न बनाने में अपने दायित्व का निर्वहन करती हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति प्राचीन होने के साथ-साथ अनेक विशेषताओं से सुसंपन्न है। भारतवर्ष का अतीत गौरव रेखांकित करने योग्य है। भारतभूमि पर जन्म ग्रहण करने वाले महापुरुषों का चरित्र प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

एक श्लोक के भावार्थ के अनुसार महापुरुषों के चरित्र से पृथ्वी के सभी मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण एवं महाभारत में उल्लिखित अनेक कहानियाँ बच्चों के लिए अत्यंत शिक्षाप्रद हैं। ऐतिहासिक कहानियों का महत्त्व भी इस दृष्टि से आज भी प्रासंगिक और उत्साहवर्द्धक है। बच्चों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और चारित्रिक विकास के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है उनका समावेश बालकों में प्राचीन भारतीय कथाओं के माध्यम से किया जा सकता है। कुछ विशेष गुण और उनके लिए प्राचीन भारतीय कथाओं की उपयोगिता और उपादेयता इस प्रकार है–

**परमपिता-**

परमात्मा ही सृष्टि का निर्माता, संचालक, पालनकर्ता और संहारक है। उसके प्रति भक्ति-भावना और अनन्य आस्था हर प्राणी का परम पुनीत कर्त्तव्य है। प्राचीन भारत की ऐसी अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं जो ईश्वर की महिमा को रेखांकित करती हैं और मानव के मन में उसके प्रति भक्तिभाव जागृत करती हैं। भगवान् में भक्ति रखने वाले अनेक पूर्वजों की गाथाएँ अब भी बच्चों में श्रद्धा उत्पन्न करती हैं। इस दृष्टि से सावित्री-सत्यवान, ध्रुव और प्रह्लाद की कहानियों का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है।

**माता-पिता की आज्ञा का पालन और उनकी सेवा–**

प्रत्येक माता-पिता अपनी संतान का हित चाहते हैं इसीलिए उनके लालन-पालन और उनकी शिक्षा पर पूर्ण ध्यान देते हैं। प्राचीन भारत में ऐसे अनेक आदर्श पुत्र हुए हैं जिन्होंने अपने माता-पिता के प्रति सम्मान-भाव प्रकट किया है, उनकी आज्ञा का पालन किया है और उनकी सेवा पर पूर्ण ध्यान दिया है। भारत की प्राचीन कथाओं में उपलब्ध भगवान् श्रीराम और पितृभक्त श्रवण कुमार का चरित्र आज भी अनुकरणीय और प्रेरणास्पद है। रामायण के तो सभी पात्र सभी तरह से प्रेरणाप्रद हैं।

**आदर्श गुरु-भक्ति-**

वैदिककाल से लेकर ऐतिहासिक काल तक भारत में अनेक आदर्श शिष्य उत्पन्न हुए हैं जिनकी कहानियाँ आज भी प्रचलित हैं। इनमें विशेष रूप से उपमन्यु, आरुणी और एकलव्य का नामोल्लेख किया जा सकता है। इन्होंने जिस गुरुभक्ति और अनुशासन-भावना का परिचय दिया है, उसका उदाहरण आज भी दिया जाता है। इस दृष्टि से आदर्श गुरु-भक्त संबंधी कथाएँ आज भी सर्वथा प्रासंगिक हैं।

**विद्योपार्जन एवं सर्वांगीण विकास –**

जीवन में शिक्षा का विशेष महत्त्व है। विद्योपार्जन से मानव का सर्वांगीण विकास संभव है। प्राचीनकाल में आश्रमों और विद्यालयों में विद्याध्ययन कर अनेक छात्र भारत के प्रसिद्ध विद्वान्, लेखक, कवि, शास्त्रज्ञ, विषय-विशेषज्ञ हुए हैं जिनकी रचनाएँ आज भी ज्ञानवर्द्धन और पथ-प्रदर्शन करती हैं तथा मनुष्य को ज्ञानार्जित करने की प्रेरणा देती हैं। अनेक ऋषि-मुनियों की प्राचीन कथाएँ अब भी प्रचलित हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत का प्रणयन स्वयं में एक विशिष्ट उपलब्धि है। याज्ञवल्क्य, मनु, वाल्मीकि, वेदव्यास, भास, कालिदास, भवभूति, चाणक्य, चरक, सुश्रुत, धन्वंतरि आदि की कहानियां आधुनिक युग में भी प्रासंगिक हैं क्योंकि वे विद्वान् मनीषी बनाकर सम्यक् विकास के लिए प्रेरित करती हैं। विद्या का महत्त्व बताते हुए लिखा गया है कि विद्या विनम्रता सिखलाती है, विनम्रता से योग्यता प्राप्त होती है। योग्यता से धन और धन से धर्म और सुख प्राप्त होता है।

**शूरता-वीरता की भावना–**

प्राचीन भारत की अनेक शौर्य-गाथाएँ आज भी ओज और उत्साह का संचार करती हैं। राम, लक्ष्मण, लवकुश, अभिमन्यु, भरत, अर्जुन, चंद्रगुप्त मौर्य, पोरस, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य आदि की वीर-भावना से ओत-प्रोत कहानियाँ किसे प्रभावित और आकर्षित नहीं करती? इनसे आधुनिक बालक युवक तथा समाज सभी वय और वर्ग के लोग वीरता और निर्भीकता की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। 'वीर-सौभद्र' खंडकाव्य की निम्नांकित पंक्तियाँ विशेष रूप से प्रेरित करती हैं–

*मैं वीर-वंश का बालक हूँ,वीरता बपौती थाती है।*
*लानत है जीने पर थाती यदि चली हाथ से जाती है॥*

**परोपकार-परायणता –**

परोपकार मनुष्य का परम धर्म है। प्राचीन भारतीय कथाओं में परोपकार-परायणता और दानवीरता का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इनमें रंतिदेव, दधीचि, शिवि, कर्ण, हर्षवर्द्धन आदि की शिक्षाप्रद कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। इनसे परोपकार की भावना अपनाने में आज भी योगदान मिलता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-कथन कितना उद्बोधक है–

*क्षुधार्त रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी।*
*तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी॥*

**सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया का पालन –**

भारतवर्ष में अनेक ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया है जिन्होंने अपने जीवन में निष्ठा के साथ सत्य, अहिंसा, प्रेम और दया के व्रत का पालन

किया है और समाज तथा राष्ट्र को इन सद्गुणों को अपनाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया है। इन सद्गुणों की आज भी प्रासंगिकता है। अतः सत्य हरिश्चंद्र, धर्मराज युधिष्ठिर, महावीर वर्द्धमान, भगवान् बुद्ध और अशोक महान् की प्राचीन कथाएँ अब भी दिशा-निर्देशन एवं पथ-प्रदर्शन करती हैं। सत्यहरिश्चंद्र के संबंध में कही गई निम्नलिखित उक्ति सत्यवादिता की शिक्षा देती है–

*चंद्र टरै, सूरज टरै, टरै जगत-व्यवहार।*
*पै दृढ़व्रत हरिचंद्र को, टरै न सत्य विचार॥*

इसी प्रकार भगवान् बुद्ध के विषय में रचित प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ भी उनका अनुसरण करने का संदेश देती हैं–

*युग-युग तक सम्पूर्ण विश्व में,*
*उनका अनुपम यश छाएगा।*
*उनका शुभ-संदेश सभी को,*
*मार्ग सर्वदा दिखलाएगा॥*
*गौतम ने जो जग में नवज्योति जलाई।*
*उससे रोशनी समस्त विश्व ने पाई॥*

**नारी का उच्चादर्श –**

वेदों से लेकर आधुनिक साहित्य तक वर्णित भारतीय नारी का जो चित्र अंकित है तथा उनकी कहानियाँ वर्तमान नारियों को अनेक सद्गुणों की शिक्षा देती हैं और उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। ऐसी कुछ विशिष्ट आदर्श नारियों में अपाला, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, गार्गी, सावित्री, सीता, दमयंती, अहल्या, अनुसूया, उत्तरा आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इनकी जीवनियाँ और गौरव-गाथाएँ आज भी पूर्णरूपेण प्रासंगिक हैं क्योंकि उनकी साधना, तपस्या और उनके उच्चादर्श अब भी महिला-कल्याण के लिए सार्थक, उपयोगी और उपादेय हैं। नर-नारियों के समवेत प्रयास से ही समाज का उत्थान संभव है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय कथाएँ अनेक दृष्टियों से वर्तमान समय में प्रासंगिक हैं और मनुष्य को सद्गुणों को अपनाने की प्रेरणा देती हैं। आज हमें अपने प्राचीन आदर्शों की ओर मुड़कर देखना होगा और उन महापुरुषों, संतों, गुरुओं, शिष्यों तथा आश्रमों से प्रेरणा लेनी होगी जिन्होंने प्राचीन परिवेश को तप, त्याग और साधना से आलोकित किया है और जिनका स्मरण हमें आज भी आस्थावान् बनाता है। अतः हम कह सकते हैं–

**सिखलाती हैं सीख निराली,**
**सब प्राचीन कथाएँ।**

–सी 10, सेक्टर जे, अलीगंज, लखनऊ (उ. प्र.)–226 024

# भक्ति के दोहे

– श्री अखिल

## माँ वीणापाणि

वागीशा माँ शारदे, धर दो मम सिर हाथ।
वाणी को उज्ज्वल करो सदा झुकाऊँ माथ॥ ..................(1)

माँ की आँखों में दया, लिए हृदय में प्यार।
भक्तों का नित कर रही, देखो बेड़ा पार॥ ..................(2)

मातु कृपा ऐसी करो, दोहे हों रसधार।
पाठकगण झूमें फिरें, बिखरे कीर्ति-बहार॥ ..................(3)

माँ ऐसी तुम शक्ति दो, फैले शुभ सन्देश।
परिवर्तन आये 'अखिल', बदल जाय परिवेश॥ ..................(4)

माँ देवी तुम बुद्धि की, मुझे नहीं कुछ ज्ञान।
सदा गोद में लीजिए, तुम तो सदा महान॥ ..................(5)

## श्री गणेश जी

बुद्धिराशि शुभ गुण सदन, विघ्नेश्वर भगवान।
प्रथम पूज्य ब्रह्माण्ड में, दिव्य ज्ञान की खान॥ ..................(6)

लम्बोदर करिवर वदन, एकदन्त गणनाथ।
ऋद्धि-सिद्धि हैं भामिनी, 'अखिल' झुकाए माथ॥ ..................(7)

## निराकार परमब्रह्म

ओम प्रणव शुचि शक्ति है, सब कुछ इसमें लीन।
व्याख्या करने में विफल, ऋषि, मुनि, गुणी प्रवीन॥ ..................(8)

भाँति-भाँति के देवता, जिनके रूप अनेक।
किन्तु 'अखिल' यह सत्य है परब्रह्म है एक॥ ..................(9)

जिसकी श्रद्धा है जहाँ, जाता है उस धाम।
किन्तु 'अखिल' सोचो जरा, उसका क्या है नाम? ..................(10)

–ओम निवास, 51–वले स्क्वायर, कबीर मार्ग, लखनऊ–226001

# है सरल आज़ाद होना, पर कठिन है आज़ाद रहना

–डॉ. रमाकान्त दीक्षित

पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी ने एक बार गाँधी जी से पूछा था–''क्या स्वतंत्र हो जाने पर अंग्रेज़ों को, अंग्रेज़ी को और अंग्रेज़ियत तीनों को यहाँ से भगाना होगा?'' गाँधी जी का उत्तर था–''कौन कहता है कि अंग्रेज़ों को भारत से निकाल देना होगा। वे यहाँ रह सकते हैं, पर अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत को मैं एक पल के लिए भी सहन न करूँगा। अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत ने हमारी संस्कृति पर ही धावा बोल दिया है। इसे कैसे सहन किया जा सकता है?''

विदेशी शासक और शक्तियाँ किसी जाति को गुलाम ही नहीं बनातीं अपितु उसकी सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को भी नष्ट कर देती हैं। हमारा देश इस बात का साक्षी है। इन्हीं बातों से दुःखी होकर हमारे देशभक्त वीरों ने अपनी बलि देकर भारत को अंग्रेज़ों के चंगुल से मुक्त कराया। मुक्त होते ही देश भर में खुशी की लहर दौड़ उठी। अपना देश, अपनी जनता, अपना शासन–सब कुछ अपना हो गया। तब गाँधी जी ने देशवासियों को चेताया कि आज़ादी प्राप्त करना तो सरल है पर उस आज़ादी को बनाये रखना बहुत कठिन है। इसी बात को कविवर हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने काव्य–पंक्तियों में इस प्रकार कहा है–

**है सरल विध्वंस करना,**
**पर कठिन निर्माण करना।**
**है सरल आज़ाद होना,**
**पर कठिन आज़ाद रहना॥**

यह सच है कि आज़ाद होना सरल है, पर आज़ादी की रक्षा करना कठिन है। वास्तविकता तो यह है कि हम आज़ादी की रक्षा कहाँ कर पाये! आज हमारा राष्ट्र संकट में है। सीमावर्ती प्रान्तों–पंजाब, कश्मीर आदि को भारत से अलग करने की वाणी और आतंकवाद की हरकतों को देख-सुनकर मन दुःख से बोझिल हो उठता है। वर्तमान राजनीति ने–प्रांतीयता, संकीर्ण साम्प्र-दायिकता, वर्ग-भेद, भाषा-विवाद आदि को बढ़ावा दिया है। हम आज तक अपने राष्ट्र को सम्मानजनक स्थान नहीं दिला पाये हैं, जबकि हमें आज़ाद हुए लगभग 65 वर्ष हो चुके हैं। हम चारों तरफ आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से घिरे हुए हैं। यह भय हमें आरम्भ से आज तक सताता आ रहा है। तभी तो गिरिजा कुमार माथुर को कहना पड़ा–

**अभी शेष है पूरी होना,**
**जीवन-मुक्ता डोर।**
**क्योंकि नहीं मिट पाई दुख की,**
**विगत साँवली भोर॥**

आज भी गुलामी के संस्कार हम पर हावी हैं। स्वदेशी का नारा लगाने वालों के घर विदेशी सामानों से अटे पड़े हैं। राष्ट्रीयता के प्रचारक अन्तर्राष्ट्रीय गिरोहों के साथ दूषणों को लिए फैल

गये हैं। विषपायी शंकर, कुटिया-वासी चाणक्य और लंगोटीधारी गाँधी के देश के लाडलों के घर सभी प्रकार की अधुनातन सुख-सुविधाएँ मौजूद हैं। एक तरफ यदि नेता बोफोर्स काण्ड, यूरिया काण्ड, हवाला काण्ड, आई. टी. सी. घोटाला आदि में अपार धन बटोरने के कारण फँसते जा रहे हैं तो दूसरी ओर अफसर भी बहती गंगा में हाथ धो रहे हैं। इस प्रसंग में एक कवि का कथन कितना समीचीन है-

**भौतिकता की भूख अब, बेच रही आदर्श।**
**तड़प रहा है आजकल, अपना भारतवर्ष॥**

पहले 'काण्ड' शब्द को अच्छे अर्थ में लिया जाता था, जैसे- बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड आदि- और आज काण्ड शब्द गड़बड़ या घोटाले का ही पर्याय बन गया है। डकैती-काण्ड, हत्या या दहेज-हत्या-काण्ड, बलात्कार-काण्ड आदि आज साधारण काण्डों की श्रेणी में गिने जाने लगे हैं।

कुछ देश-भक्ति को ठुकराकर जयचन्द बनकर देश के गुप्त दस्तावेज़ तक दूसरे देशों के हाथों मोटी रकम लेकर बेच रहे हैं। मैं उनसे पूछना चाहूँगा-

**सोने-चाँदी में, खेलने वालो।**
**आदमीयत है, किस ख़ज़ाने में॥**

हमने आज़ादी का ग़लत अर्थ लगा लिया। मर्यादा को त्याग दिया। हम भूल गये कि आज़ादी का सही अर्थ क्या होता है ? देश के प्रति एक देशवासी के क्या कर्त्तव्य होते हैं ? हम भूल गये कि व्यक्ति स ~ड़ा देश होता है। हम अपने-अपने स्वार्थ की दीवारों, जैसे-नोट, वोट, धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण, भाषा आदि से घिरते गये। इन दूषणों ने हमें तोड़ा है, जोड़ा नहीं। जोड़ते तो सद्गुणों के भूषण हैं और ये सद्गुणों के भूषण भारतीय संस्कृति में ही देखे जा सकते हैं। जैसा कि गाँधी जी ने भी कहा है- "मेरा यह कहना नहीं कि हम शेष दुनिया से बचकर रहें या अपने आस-पास दीवारें खड़ी कर लें, लेकिन मैं यह ज़रूर कहता हूँ कि पहले हम अपनी संस्कृति का सम्मान करना सीखें, उसे आत्मसात् करें। मेरी यह मान्यता है कि हमारी संस्कृति में जैसी अमूल्य निधियाँ हैं, वैसी किसी दूसरी संस्कृति में नहीं हैं।"

आज हम अपनी संस्कृति से दूर चले आये हैं। उस से कट गये हैं। इसीलिए आतंकवाद, स्वार्थ, लालच, विद्वेष, घृणा आदि दूषण पनप रहे हैं। आज आज़ादी खतरे में है। जन-जीवन सुरक्षित नहीं है। कर्णधार नैया डुबाने में लगे हैं। हम आज़ाद ज़रूर हुए, पर उसे सुरक्षित कहां रख पाये? अंत में भारत की आज़ादी और भारत के विषय में कविवर गोपाल सिंह नेपाली के शब्दों में यही कहना चाहूँगा-

**तीन-चार फूल हैं, आस-पास धूल है।**
**बाँस हैं, बबूल हैं, घास के दुकूल हैं।**
**वायु भी हिलोर दे, फूँक दे, झकोर दे।**
**कब्र पर, मज़ार पर, यह दिया बुझे नहीं।**
**यह किसी शहीद का, पुण्य प्राण-दान है॥**

-कानोडियों की गली, डॉ. मुरारी लाल मार्ग, भिवानी-127021 (हरियाणा)

# गीतोक्त आगम-विमर्श

-डॉ. शीतलाप्रसाद पाण्डेय

धर्म की द्विधा स्थिति है-इष्ट और पूर्त्त। उनमें से यहाँ इष्ट की वैदिक तथा पूर्त्त की तान्त्रिक रूप से पहचान की गई है।[1] वस्तुतः देह को दिव्य तथा अध्यात्म का साधन मानकर "देवो भूत्वा देवं यजेत्"[2] सिद्धान्त पर आधारित आगम-सिद्धान्त में बाह्य 'वरिवस्या' को आन्तर पूजा का प्रक्रियात्मक सोपान माना गया है, तदनुसार आगम और निगम में व्यवहार तथा परमार्थ के सामरस्य एवं एकान्वयिता की उद्घोषणा है।[3]

आगम का अर्थ है परम्परा से प्राप्त सिद्धान्त, महापुरुषों के उपदेश इत्यादि। आचार्य शङ्कर, भर्तृहरि तथा अभिनवगुप्त आगम का अर्थ "पारम्पर्यागतः" बतलाते हैं।[4] श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान भी परम्परा-प्राप्त है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे जिस बात का उपदेश कर रहे हैं, वह परम्परा से प्राप्त है।[5]

आगम को वेद के उपासनाकाण्ड का क्रियात्मक पक्ष माना गया है। विभिन्न देवताओं की उपासना के निमित्त भिन्न-भिन्न सम्प्रदायानुसार आगमशास्त्रों की रचना हुई। यथा-शैवागम, वैष्णवागम, स्कान्दागम, शाक्तागम, गाणपत्यागम, सौरागम, बौद्धागम तथा जैनागमादि।

श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजी को उपदेश देते हुए कहते हैं-"उपासना की तीन विधियां हैं-वैदिक, तान्त्रिक और मिश्रित। इन तीनों में से भक्त को जो भी उसके अनुकूल जान पड़े उसी विधि से उसे भगवान् की आराधना करनी चाहिए। तान्त्रिक शब्द का तात्पर्य आगमशास्त्र ही है।"[6]

---

1. "धर्मो द्विविधः, इष्टः पूर्तश्चेति। तत्रेष्टो वैदिकः पूर्तस्तान्त्रिकः" - अष्टप्रकरण, पृष्ठ 36, सम्पादक पं. ब्रजवल्लभद्विवेदी, काशी संस्करण।
2. एवं विष्णुमयो भूत्वा स्वात्मना साधकः पुरा। मानसेन तु यागेन ततो विष्णुं समर्चयेत्॥ जयाख्यसंहिता-12/1.
3. यानीहागमशास्त्राणि याश्च काश्चित् प्रवृत्तयः। तानि वेदं पुरस्कृत्य प्रवृत्तानि यथाक्रमम्॥
   - महाभारत, अनुशासनपर्व, 122, 4.
4. श्रुतवन्तो वयं धीराणां धीमतां वचनम्। ये आचार्या नोऽस्मभ्यं तत्कर्म ज्ञानं च विचचक्षिरे व्याख्यातवन्तस्तेषामयमागमः पारम्पर्यागत इत्यर्थः।
   ईशावास्योपनिषद् मन्त्र 10 के भाष्य में
5. गीता, 4/2.
6. श्रीमद्भागवत, 11/7.

तन्त्र का साधारण अर्थ है–विधि, प्रणाली, पद्धति इत्यादि। किन्तु उपासना सम्बन्धी शास्त्रों के सन्दर्भ में तन्त्र शब्द का विशेष अर्थ है। काशिकावृत्ति में तन् से ष्ट्रन् प्रत्यय लगाकर यह शब्द बना। इसकी व्युत्पत्ति होगी– **तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्।** ज्ञान का विस्तार होने के कारण उपासना सम्बन्धी शास्त्रों को तन्त्र कहा जाता है। तन्त्र का दूसरा अर्थ भी पाया जाता है कि यह शास्त्र तत्त्व तथा मन्त्रों का विस्तृत ज्ञान प्रदान कर जीव का त्राण करता है।[7]

तन्त्र–शास्त्र के विस्तार के साथ–साथ तन्त्र की एक बलवती योगपद्धति भी विकसित हुई। सृष्टि, प्रलय, देवी–देवताओं की उपासना, साधना और सिद्धि द्वारा अलौकिक दैवी शक्तियों का उपार्जन, कर्म, पुरुषार्थ, योग, समाधि द्वारा चार प्रकार की (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) मुक्तियों की प्राप्ति। तन्त्र का मनोवैज्ञानिक पक्ष भी प्रबल है। अतः धार्मिक जनता उसका लाभ उठा रही है। लोगों का इहलौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान होता है।[8] गीता में भी इस ओर संकेत प्राप्त होता है।[9]

आगमशास्त्र के अन्तर्गत एक विस्तृत क्षेत्र आता है, जिनके ग्रन्थों की अपरिमित सम्पत्ति सुरक्षित तथा परम्परा के कार्यरूप में सम्पन्न हो कर सुरक्षित है। आगमशास्त्र के अध्ययन से विभिन्न आगमों का ज्ञान होता है। प्रकृत सन्दर्भ में (गीतोक्त दिशा) सुस्पष्ट है कि यह वैष्णवागम से अत्यन्त प्रभावित है जो वर्तमान में पाञ्चरात्र तथा वैखानस आगम के रूप में जाना जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त दोनों आगम कभी सात्वत, भागवत तथा एकान्तिन् के पूर्वरूप रहे हैं या यों कहिए कि ये पर्याय ही हैं। इनमें सिद्धान्त–भेद तो अवश्य दिखाई देता हैं किन्तु परतत्त्व वासुदेव या नारायण सर्वमान्य है।[10]

सात्वत सम्प्रदाय का मूल महाभारत के शान्तिपर्व में उल्लिखित है। जहाँ भीष्म जी युधिष्ठिर से कहते हैं कि राजा उपरिचर वसु ने सात्वत विधि से भगवान् की आराधना करके ब्रह्मलोक को प्राप्त किया था। सात्वतधर्म के अनुसार नारायण, वासुदेव, परमात्मा समस्त भूतों की आत्मा है। वही संसार के सृष्टिकर्त्ता हैं। वासुदेव का दूसरा रूप संकर्षण है। संकर्षण से

---

7. सर्वेऽर्था येन तन्यन्ते त्रायन्ते च भयाज्जनाः।
इति तन्त्रस्य तन्त्रत्वं तन्त्रज्ञाः परिचक्षते॥
–विष्णुसंहिता, 2/10.

8. ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्येऽथवा। सर्वे ते समधर्माणः शिवधर्मे नियोजिताः॥..... एकैव सा स्मृता जातिर्भैरवीया शिवाऽव्यया। तन्त्रमेतत समाश्रित्य प्राग्जातिं नह्युदीरयेत्।
– स्वच्छन्दतन्त्र, 4/540–546.

9. गीता, 9/ 32.

10. विमानार्चनकल्प द्वारा महर्षि मरीचि, समर्त्तार्चना–धिकरण द्वारा अत्रि मुनि।
जयाद्यसंहिता, सात्वतसंहिता, आगमप्रा–माण्य द्वारा यामुनाचार्य।

प्रद्युम्न (मन) उत्पन्न होता है तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध (अहंकार) उत्पन्न होता है। अहंकार से फिर तन्मात्रादि के द्वारा स्थूलभूतादि की सृष्टि होती है।[11] इस संसार से मुक्ति पाने के लिए ऐकान्तिक भक्ति की आवश्यकता है। ऐकान्तिक भक्ति सर्वतोभावेन प्रभु के प्रति शरणागति या प्रभु के लिए प्रपत्ति के द्वारा आत्मसमर्पण है। सात्वतधर्म में आत्मसमर्पण की प्रधानता है। यही कारण है कि गीता में स्थल-स्थल पर तत्कुरुष्व मदर्पणम्[12], ब्रह्मार्पणम् तथा सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज[13] कहा गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के हनुमद्भाष्य में समत्व बुद्धि का अर्थ भगवदर्पण ही किया गया है।[14] श्रीमद् आनन्दवर्द्धनाचार्य ने तो अपनी गीता-व्याख्या में **त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता** श्लोक में सात्वत धर्मगोप्ता[15] पाठ ही कर दिया है।

श्रीमद्भगवद्गीता इसी सात्वतधर्म की दार्शनिक व्याख्या है, यदि यह लिखा जाय तो अन्यथा नहीं होगा। लेकिन गीता सात्वतधर्म के नैष्कर्म्य तथा सर्वात्मना भगवदर्पण के साथ अपने समत्वदर्शन का प्रतिपादन भी करती है। गीता में समत्व पर बड़ा जोर दिया है।[16] इसी सात्वत तथा भागवत को ही एकान्तिन कहते हैं। एकान्ततः अनन्यभावेन भगवान् के प्रति आत्मसमर्पण करने के कारण एकान्तिन् कहे जाते हैं। इसी एकान्तिन् के लिए भगवान् ने गीता में कहा है-

**अनन्यश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।**

महाभारत में एकान्तिन् का अर्थ करते हुए कहा गया है कि सात्वतों द्वारा धारण किया जाने वाला बड़ा कठिन धर्म एकान्तधर्म है। एकान्तधर्म का आचरण करने वाले पुरुष बड़े दुर्लभ होते हैं। ये एकान्तभक्ति वाले बड़े सात्विक होते हैं और नारायण-परायण होते हैं।[17] पाञ्चरात्रागम की प्राचीन संहिता पौष्करसंहिता में वैखानस को एकान्तिन् कहा गया है।[18]

तन्त्रसाधना और अध्यात्मपरम्परा में भगवत्तत्त्व प्राप्ति के लिए या जीव और ब्रह्म के ऐक्यबोध के लिए गुरु ही एकमात्र साधन है। तन्त्रागमो में गुरु को शिव तथा नारायण का साक्षात् स्वरूप कहा गया है।[19] तान्त्रिक परम्परा में गुरु-तत्त्व अक्षय कोष है। बिना गुरु के गति नहीं। शिष्य-लक्षण का भी विशद विवेचन आगम-शास्त्रों में हुआ है। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि शिष्य में स्नेह हो तो गुरु गुप्त से गुप्त रहस्य बता देते हैं। गुरु गाय है तथा शिष्य बछड़ा है।[20]

---

11. महाभारतशान्तिपर्व, अध्याय, 335, 337, 339.
12. गीता, 9/27.
13. गीता, 18/66.
14. गीता, 2/50.
15. गीता, 11/18.
16. गीता, 13/27,28; 5/19; 9/27; 6/32,33; 2/18, 38, 48; 4/22.
17. महाभारत आश्वमेधिकपर्व 359/ 55, 56, 61, 62, 70, 71.
18. पौष्करसंहिता 36/ 260 ब- 262 ए.
19. महानारायणोपनिषद्।
20. श्रीमद्भागवत 1/1/8.

श्रीमद्भगवद्गीता में भी साक्षात् श्रीकृष्ण ही गुरु है और शिष्य रूप में अर्जुन।[21] सद्गुरु पूर्ति पर्यन्त हृदय में रह कर साधक के साथ चलते हैं। यदि वे साथ न रहें तो, साधक पार न हो–शर्त है कि शिष्य गुरु के पास जाये और निवेदन करे कि मैं आपकी शरण में हूँ। यही कारण है कि सन्त ज्ञानेश्वर कहते हैं कि गुरुसेवा ही भाग्य की जननी है क्योंकि जिस जीव की स्थिति परम शोचनीय हो, उसे भी यह ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति करा देती है।[22] जीवन की उच्चतम साधना और सिद्धि, योग समाधि का सशक्त व सर्वमान्य साधन है–मन्त्र-तत्व, तन्त्र विधान में तो मन्त्र ही मुख्यमन्त्री होता है। धरती पर गुरु ही शिष्य के कान में 'मन्त्रोपदेश' करते हैं। तन्त्रशास्त्र में मन्त्र की परिभाषा करते लिखा गया है कि जिसके मनन, चिन्तन और ध्यान द्वारा संसार सागर से उत्तीर्ण हो कर दु:खादि से मुक्ति मिलती है और परमानन्द की प्राप्ति होती है, वही मन्त्र है। भारतीय धर्मों ने मन्त्र की विभिन्न व्याख्यायें भले ही की हों पर वे मूल सनातन धर्मी है।[23]

वैदिक मन्त्रों की तुलना में तन्त्रागम के मन्त्र संक्षिप्त होते हैं। मन को प्रकृत अवस्था से श्रेष्ठ अवस्था तक ले जाना मन्त्र-शास्त्र का कार्य है। मन्त्रशास्त्र में बीजाक्षर, घनाक्षर तथा एकाक्षर का सर्वाधिक महत्त्व है। प्रत्येक देवता का अपना मन्त्र और बीजाक्षर है। बीजमन्त्र ही देवता का मन्त्र रूप होता है। मन्त्र, देवता तथा गुरु एक है–

**यथा मन्त्र नथा देवे यथा देवे तथा गुरौ।**
**पश्येदभेदता मन्त्रो एवं भक्तिक्रमो मुने॥**

बीजाक्षर बीज से भी सूक्ष्म है, जिससे समग्र वृक्ष का विकास और पल्लवन होता है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं–

**बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।**[24]

प्रणव ही सर्वोपरि बीजमंत्र है जो सर्वव्यापी भगवतत्त्व का प्रकाश करता है। इसमें शक्तिमान् और शक्तितत्त्व दोनों विद्यमान हैं। भारतीय मनीषा ने विविध प्रकार से प्रणव की महिमा का विवेचन किया है। ऐसा कोई धर्म, अध्यात्म तथा साधना उपक्रम नहीं है जिसमें प्रणव की महत्ता न कही गयी हो। जीव तथा जगत् के सभी रहस्य, भगवान् का विश्वात्मक और विश्वातीत रूप, शिव तथा शक्ति का सामरस्य भूमातत्त्व, सभी प्रणव के भीतर समाहित हैं। प्रणव के अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा से स्थूल, सूक्ष्म, कारणतत्त्व से गुणातीत अखण्ड अन्य पदार्थ के निकट पहुँचने का सरल-सहज रास्ता है। श्रीमद्भगवद्गीता में **'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म'**[25] तथा **'गिरामस्म्येकमक्षरम्'**[26] की सुस्पष्ट घोषणा है।

काश्यप ज्ञानकाण्ड में भी प्रणव का विवेचन प्राप्त होता है।[27] प्रणव की महिमा अपार है। सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा 'ओवीच्छन्द' में प्रणीत गीता भी प्रणव रूप ही है, जो निगमागम धारा का

---

21. गीता, 2/7.
22. हिन्दी ज्ञानेश्वरी, अध्याय-13.
23. कुलार्णवतन्त्र, 17/54.
24. गीता, 7/10.
25. गीता, 8/13.
26. गीता, 10/25.
27. ज्ञानकाण्डे-षड्डुत्तरशततमोऽध्याय:।

प्रतिनिधित्व करता है।[28] जिस प्रकार प्रणव से ब्रह्म की प्राप्ति कर सकते हैं उसी भाँति मन्त्र देवता से हम अपनी आत्मशक्ति पहचान सकते हैं। देवता साधक की परम श्रद्धाभावना में है जो एकाग्र मन से जप के द्वारा आविर्भूत होते हैं। देवता के अनुग्रह का अंग जप है। श्रीकृष्ण ने गीता में '**यज्ञानां जपयज्ञोस्मि**'[29] कहा है।

मन्त्र चैतन्यता की पूर्णता है-"**निखिल-मूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिः प्रसरासु च**" है। यही कारण है कि समस्त तत्त्व-चिन्तन का सार शक्तितत्त्व है। निगमागम का निदर्शन शक्तितत्त्व की विवेचना है। गीता की परिधि में "**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः**"।[30] बहुत जन्मों के अभ्यास (साधना ) के फलस्वरूप ज्ञान हुआ कि "सब वासुदेव ही है। वही सारे प्राणियों में वास करने के कारण वासुदेव है।"[31] गीता में प्रकृति और पुरुष जिन्हें क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। दोनों प्रभु की है 'प्रकृति' है। पहली 'अपरा' प्रकृति है तथा दूसरी 'परा'।[32] प्रकृति के प्रथम परा और अपरा रूप से दो रूपों में वर्णित है तदनन्तर उसके आठ भेद प्राप्त होते हैं। उसी प्रकृति के द्वारा कार्य करता हुआ जीव ईश्वर की 'परा' प्रकृति कहलाता है।

आगमशास्त्र में दो प्रकार की प्रकृति चेतन तथा अचेतन प्रतिपादित है। चेतन प्रकृति जीवभूत है तथा अचेतन प्रकृति गीता की भाँति अष्टधा निर्दिष्ट है। प्रकृति के साथ संश्लिष्ट पुरुष प्रकृतिस्थ जीवात्मा क्षेत्रज्ञ अनेक हैं। इन्हें भी नित्य माना गया है या अनादि अविद्या सञ्चित पुण्य-पाप का फल भोगने के कारण नाना शरीरों में प्रवेश कर तत्तत् रूपों में शुभ-अशुभ कर्म करते हुए तदनुसार फल भोगते हुए बार-बार शरीर धारण करते हैं।[33] इस प्रकार आगमिक शक्ति की अवधारणा गीता की आत्ममाया या योगमाया से बैठती है। शक्ति और शक्तिमान् का सदा ऐक्य रहता है।[34]

इस प्रकार अनेक ऐसे प्रकरण हैं जिनको देखने तथा पढ़ने से स्पष्ट होता है कि गीता जहाँ सर्वशास्त्रमय ज्ञान की कुञ्जी है वहाँ इसमें आगम-शास्त्र के अनेक तत्त्व निहित हैं, किन्तु यह स्पष्ट लिखा जा सकता है कि गीता वह गौरवमय महान् ग्रन्थ है जिसके विषय में सभी शास्त्र तथा धर्म यह कह सकते हैं कि इसमें हमारी बात है, पर उसको किसी एक धर्म, सम्प्रदाय या शास्त्र से नहीं बांधा जा सकता है। अतः गीता सभी की है तथा गीता में सभी शास्त्र एवं सभी शास्त्रों में गीता समाई हुई है।

**– असि. प्रोफेसर, धर्म-आगम विभाग, बी. एच. यू., वाराणसी-221005**

---

28. श्रीज्ञानेश्वरी, अनुवादिका सम्पादिका-डॉ. ऊर्मिला शर्मा, विमल प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद-9, 1983 ई., भूमिका, पृ. 7.
29. गीता, 10/25.
30. गीता, 7/19.
31. अहिर्बुध्न्यसंहिता, 7/28 "समस्तभूतवासित्वाद् वासुदेवः प्रकीर्तितः"।
32. गीता, अध्याय 13; 7, 8-5.
33. विमानार्चनकल्प पटल-86.
34. प्रकीर्णाधिकार-33/12 द्वारा भृगु ऋषि।

# महाकवि कालिदास की रचनाओं में 'संस्कार'

–श्रीमती ( डॉ. ) रमा चौधरी

जिस क्रिया से शरीर, मन और आत्मा उत्तम हो उसे संस्कार कहते हैं। संस्कार किसी वस्तु के पुराने स्वरूप को बदलकर उसे नया स्वरूप दे देता है। संस्कारों की गणना के विषय में शास्त्रों में मतभेद पाये गये हैं। सम्प्रति सर्वाधिक लोकप्रिय संस्कार 16 हैं।

जहां तक महाकवि कालिदास की बात है, उन्होंने संस्कारों की निश्चित संख्या का उल्लेख नहीं किया है। जब भी संस्कारों का प्रकरण आया, वे 'गर्भाधानादि संस्कारैः' अथवा केवल 'संस्कारैः' लिखकर किसी निश्चित संस्कार-संख्या के विवाद में नहीं पड़े, फिर भी कालिदास-साहित्य में यथाप्रसंग संस्कारों की स्पष्ट चर्चा हुई है। कालिदास-वर्णित सभी संस्कार धर्मशास्त्रों के अनुकूल हैं। यहाँ उनके द्वारा वर्णित संस्कारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। जिनकी संख्या दस है, वे इस प्रकार हैं– गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म, चूड़ाकरण, उपनयन, गोदान, विवाह, नामकरण और अन्त्येष्टि। वस्तुतः कालिदास ने इन दस संस्कारों का ही बहुशः उल्लेख किया है।

### गर्भाधान-संस्कार –

गर्भ जब माता के उदर में स्थापित हो जाता है तो कई प्रकार के दोषों के आक्रमण होते हैं। इनसे बचने के लिए गर्भाधान-संस्कार किया जाता है। इस संस्कार के करने से गर्भ सुरक्षित रहता है।

रघुवंश के द्वितीय सर्ग में दिलीप के द्वारा सुदक्षिणा में किए गए गर्भाधान को कहीं भी धर्मशास्त्रीय विधि के प्रतिकूल नहीं होने दिया।[1] इसी प्रकार गर्भाधान की सूचना कवि ने दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला में गर्भाधान द्वारा दी है।[2] कवि ने इन प्रसंगों में आ+धा का प्रयोग किया है। रघुवंश में ही वर्णन मिलता है कि दशरथ की तीनों रानियों ने लोककल्याणार्थ विष्णु के अंशस्वरूप गर्भ को उसी प्रकार धारण किया जिस प्रकार सूर्य की अमृतमयी किरणें जल को धारण करती हैं।[3]

### पुंसवन –

यह संस्कार गर्भाधान के बाद प्रायः तीन मास के अन्तर्गत करने का विधान है। इस संस्कार से गर्भ को बल[4] प्रदान किया जाता है, जिससे

1. कालिदास की कृतियों में धर्मशास्त्रीय विषय, डॉ. श्रीपति त्रिपाठी, पृ. 52.
2. अभि० शा० 4/4.
3. रघु० 10/58.
4. द्र० अथर्व० 6/11/1 में पुंसवन शब्द तथा आ० गृ० सू० 1/13, 2/7.

पुरुष सन्तान उत्पन्न होती है। यह संस्कार तीन मास के अन्तराल में किया जाता है।

गर्भिणी रानी सुदक्षिणा को राजा दिलीप वैसे ही महत्त्वशालिनी मानते थे जैसे अमूल्य रत्नों को गर्भ में छिपाए हुए पृथ्वी, अपने भीतर अग्नि को छिपाए रखने वाली शमीलता (पेड़) अथवा भीतर ही भीतर गुप्तजलवती वैदिक नदी सरस्वती।[5] समय आने पर उन्होंने धर्मशास्त्रीय विधि से पुंसवन-संस्कार की विधि को किया।[6]

**नामकरण–**

धार्मिक संस्कारों के अन्तर्गत नामकरण संस्कार भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह शुभाशुभ कर्मों में भाग्य का हेतु है। नामकरण-संस्कार के विस्तृत विधि-विधान कालिदास के साहित्य में विस्तार के साथ प्राप्त नहीं होता, पर रघुवंश के कतिपय स्थल इस विषय में द्रष्टव्य हैं। रघुवंश महाकाव्य के पञ्चम सर्ग में अज के नामकरण का उल्लेख केवल एक श्लोक में हुआ है।[7] रघु के नामकरण के विषय में 'रघि' धातु के जाना अथवा आगे बढ़ना रूप अर्थ को विचार कर अपने पुत्र का 'रघु' ऐसा नामकरण किया।[8]

रघुवंश के अन्तर्गत वर्णन मिलता है कि आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहते सीता ने दो रघुकुमारों को जन्म दिया। महर्षि द्वारा उनका नामकरण कराया गया और नवजात शिशुओं का नाम लव और कुश रखा था।[9]

**चूड़ाकर्म –**

चूड़ा का अर्थ है– केशगुच्छ। जो मुण्डन करने के बाद सिर पर रखा जाता है और इसे शिखा या चोटी कहते हैं। चूड़ाकर्म या चूड़ाकरण वह संस्कार है जिसमें जन्म के उपरान्त पहली बार सिर के बाल काट दिये जाते हैं और सिर पर केवल एक बाल-गुच्छ (शिखा) शेष रखते हैं। चूड़ा से ही चौल बना है क्योंकि उच्चारण में ड का ल हो जाना सहज माना गया है– डलयोर-भेदः।[10]

रघुवंश के तृतीय सर्ग में चूड़ाकर्म-संस्कार का उल्लेख प्राप्त होता है। तदनुसार मुण्डन-संस्कार हो जाने पर घने चंचल लटों वाले तथा समान आयु के मन्त्रियों के पुत्रों के साथ रघु ने पहले वर्णमाला लिखना-पढ़ना सीखा और फिर शास्त्र तथा काव्य का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया, मानों नदी के मुहाने से होकर सीधे समुद्र में पैठ गए हों।[11]

---

5. रघु० 3/9.
6. रघु० 3/10.
7. रघु० 5/36 पर मल्लिनाथ की टीका।
8. रघु० 3/ 21.
9. रघु०, 15/ 32.
10. धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी) भाग-1, डॉ. काणे, पृ. 203.
11. रघु० 3/28.

**उपनयन –**

यह संस्कार अतिप्राचीन है, इसका उद्भव वेद से माना गया है। प्राचीन काल में उपनयन-संस्कार बड़े उत्सवपूर्वक मनाया जाता था। गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली में उपनयन संस्कार आजकल भी सम्पन्न कराया जाता है।[12] उपनयन-संस्कार का संकेत रघुवंश के तृतीय सर्ग में उपलब्ध होता है, जहाँ 11वें वर्ष में शास्त्रानुकूल उपनयन कर चुकने पर गुरुओं ने रघु को शिक्षा प्रदान की।[13]

**विद्यारम्भ–**

विद्यारम्भ-संस्कार का उल्लेख रघुवंश में दो स्थलों पर मिल जाता है। प्रथम मुण्डन-संस्कार के सम्पन्न हो जाने पर रघु ने जब वर्णमाला का लिखना-पढ़ना आरम्भ किया।[14] दूसरा 15वें सर्ग में जब लव-कुश कुछ बड़े हुए तब कुलपति महर्षि वाल्मीकि ने उन दोनों भाइयों को प्रथम तो वेद-वेदाङ्ग पढ़ाया और तत्पश्चात् उन्हें अपनी अमरकृति रामायण का गान भी सिखाया।[15]

**केशान्त–**

यह संस्कार सोलह वर्ष की आयु में किया जाता था। केशान्त-संस्कार को गोदान-विधि भी कहा जाता है। गोदान-विधि की चर्चा रघुवंश के तृतीय सर्ग में है[16], जहाँ महाराज दिलीप ने राजकुमार रघु का केशान्त नामक संस्कार कर चुकने के बाद उसका विवाह संस्कार सम्पन्न कराया। मल्लिनाथ के मत में यह गोदान-संस्कार, केशान्त-संस्कार ही होता है।

**विवाह–**

विवाह संस्कार भी एक महत्त्वपूर्ण विधि है, जिसे वेद-स्मृति से लेकर आज तक सर्वोत्तम संस्कार के रूप में समाज एवं राष्ट्र तक की आबादी को अक्षुण्ण रखने हेतु सराहनीय माना गया है।

महाकवि कालिदास की कृतियों में विवाह संस्कार का वर्णन रघुवंश[17] और कुमारसम्भव[18] इन दोनों महाकाव्यों में विस्तार से हुआ है। संस्कारों में सबसे अधिक वर्णन इसी संस्कार का कालिदास की कृतियों में हुआ है। कालिदास की दृष्टि में विवाह-संस्कार वंशवृद्धि एवं पितरों का ऋण उतारने हेतु सन्तान की प्राप्ति के निमित्त किया जाता है।[19]

---

12. आ० गृ० सू० 1/19, 1/6.
13. अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्। – वही, 3/29.
14. वही, 3/28.
15. साङ्गं च वेदमध्याप्य किञ्चिदुत्क्रान्तशैशवौ।
    स्वकृतिं गापयामास कविः प्रथमपद्धतिम्॥
    – वही, 15/ 33.
16. अथास्य गोदाविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुरुः। – रघु०, 3/33.
17. रघु०, 7/18-28.
18. कु० सं० 7/1-28 तथा 30-38.
19. रघु० 1/66-71.

धर्मशास्त्रों में विवाह के आठ प्रकार बताए गए हैं– ब्राह्म विवाह, दैव विवाह, आर्ष विवाह, प्राजापत्य विवाह, आसुर विवाह, गान्धर्व विवाह, राक्षस विवाह तथा पैशाच विवाह।

कालिदास ने अपने साहित्य में उपर्युक्त विवाह प्रकारों में से केवल स्वयंवर, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर इन चार का उल्लेख किया है। इनमें भी स्वयंवर-विवाह का वर्णन बड़े ठाठ-बाट के साथ रघुवंश महाकाव्य में हुआ है। जिसमें राजकुमारी इन्दुमती के स्वयंवर का विस्तृत वर्णन है। इस स्वयंवर में दूर-दूर से देश-देश के राजकुमार पधारे थे। विदर्भ देश के राजा भोज ने अपनी बहन इन्दुमती के स्वयंवर के लिए युवराज अज को बुलवाने हेतु अपने विश्वासपात्र दूत को अज के पिता महाराज रघु के पास अयोध्या भेजा था।[20] अज इस स्वयंवर में पिता की आज्ञा से ही गए थे और स्वयंवर-सभा में इन्दुमती ने युवराज अज का वरण किया। इन्दुमती-स्वयंवर भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का एक उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत करता है। इस स्वयंवर में जब राजकुमारी इन्दुमती ने राजकुमार अज का वरण कर लिया तो वञ्चित राजाओं को बड़ी ईर्ष्या हुई थी, क्योंकि वे भी इन्दुमती को प्राप्त करने के लिए ही तो स्वयंवर में आए थे। वञ्चित नरेशों की इसी ईर्ष्या के कारण राजकुमार अज का इन राजाओं के साथ तुमुल युद्ध भी हुआ था और युद्ध में प्रतिपक्षी राजाओं को हराकर अज इन्दुमती के साथ हर्षोल्लास के साथ अपने धाम लौट आए थे।

स्वयंवर -सभा में इन्दुमती के सौन्दर्य का बड़ा ही चमत्कारपूर्ण वर्णन कालिदास ने किया है। इन्दुमती की उपमा 'दीपशिखा'[21] से देने के कारण कवि का नाम भी दीपशिखा विशेषण से भूषित होकर दीपशिखा कालिदास के रूप में प्रख्यात हो गया। रघुवंश के एकादश सर्ग में सीता-स्वयंवर का भी वर्णन किया है, किन्तु वह संक्षेप से है।

शिव-पार्वती विवाह को प्राजापत्य-विवाह की संज्ञा दी गई है। रघुवंश महाकाव्य में जनक-धनुष की प्रत्यञ्चारोहण की अपनी शर्त को कन्या के लिए वर से शुल्क लेना मानकर दु:खी हैं।[22] अत: कन्या के लिए वरपक्ष से कुछ भी शर्त लगाकर लेना कालिदास को स्वीकार नहीं है।

---

20. स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः...........भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः। – रघु०, 5/39.
21. संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा। नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥ – रघु०, 6/67.
22. पीडितो दुहितृशुल्कसंस्थया। – रघु०, 11/38.

**गान्धर्व विवाह –**

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में दुष्यन्त और शकुन्तला के विवाह का गान्धर्व विधि से ही वर्णन किया है।

अन्त्येष्टि –

आर्य जाति का यह अन्तिम संस्कार है। सभी वर्ग के लोग इस संस्कार को अपनी–अपनी प्रथा के अनुसार बड़ी सतर्कता से कराते हैं। चक्रवर्ती सम्राट् रघु की मृत्यु का समाचार मिलते ही उनके पुत्र युवराज अज ने संन्यासियों की तरह अग्निरहित अन्त्येष्टि विधि को सम्पन्न किया था।[23] यह जानते हुए भी कि योगविधि से प्राणों का परित्याग करने वाले नित्य तृप्त होते हैं, अज ने पिता रघु के और्ध्वदैहिक कर्मों का सम्पादन भी किया।

रघुवंश के अष्टम सर्ग में अज अपनी पत्नी इन्दुमती की अन्तिम विधि को नगर के उपवन में पूर्ण विधि से कराते हैं।[24] रघुवंश के 12वें सर्ग में जटायु का अन्तिम संस्कार श्रीराम और लक्ष्मण उसी भाव से करते हैं, जिस भाव से कोई अपने पिता का संस्कार करता है।[25] असाध्य रोग से पीड़ित अग्निवर्ण की मृत्यु हो जाने पर गृहोपवन में किए गए अन्तिम संस्कार को प्रकाण्ड विद्वानों ने अन्त्येष्टि संस्कार स्वीकार किया।[26]

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि संस्कारों के प्रति भारतीय संस्कृति के पुरोधा महाकवि कालिदास की विशेष निष्ठा रही है। संस्कारों के विषय में उनका गहन अध्ययन रहा है। संस्कार–सम्बन्धी इस गहन अध्ययन को उनकी कृतियों में जो सारगर्भित अभिव्यक्ति मिली है,वह संक्षिप्त और सांकेतिक होने पर भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और भारतीय परम्परानुकूल है।

**– एसोसिएट प्रोफैसर, हँसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर।**

---

23. श्रुतदेहविसर्जनः पितुश्चिरमश्रूणि विमुच्य राघवः। विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं यतिभिः सार्धमनग्निमग्निचित्॥ – रघु०, 8/25.
24. विससर्ज तदन्त्यमण्डमनामनलायागुरुचन्दनैधसे। – रघु०, 8/71; 73.
25. वही, 12/56.
26. वही, 19/54.

# वाल्मीकि रामायण में सत्य की महत्ता

– सुश्री रितु कुमारी

वाल्मीकि रामायण जो भारतीय वाङ्मय में आदिकाव्य या आदिमहाकाव्य के नाम से प्रसिद्ध है, निस्सन्देह नैतिक आदर्शों का एक विशाल भण्डार है। अनेक शताब्दियों से इस महाकाव्य ने जिस प्रकार भारतीय समाज के जीवन को प्रभावित, अनुप्राणित एवं आदर्शोन्मुख किया है, वैसा अन्य कोई भी ग्रन्थ नहीं कर सका। वाल्मीकि रामायण प्रत्येक दृष्टि से हमें सामाजिक और नैतिक मूल्यों की शिक्षा देती है।

नैतिक मूल्यों में सत्य की महत्ता स्वयं सिद्ध है। मनुष्य के जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मुख्य पुरुषार्थ माने गये हैं, उनमें प्रथम पुरुषार्थ अर्थात् धर्म की वृद्धि सत्य के द्वारा ही मानी गयी है– **धर्मः सत्येन वर्धते।**[1] सत्य को ही सभी तपों में श्रेष्ठ माना गया है– **नास्ति सत्यात्परं तपः।**[2] सत्य की श्रेष्ठता के कारण ही मनु[3], याज्ञवल्क्य[4] आदि ने इसकी गणना धर्म के लक्षणों में की है। इसीलिए हमारे शास्त्रों ने हमें सत्य में प्रमाद न करने की शिक्षा दी है– **सत्यान्न प्रमदितव्यम्।**[5]

रामायणकालीन जीवन में भी सत्य को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इसीलिए रामायण में सत्य को ही परमधर्म माना गया है– **आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः।**[6] यह सम्पूर्ण सृष्टि ही सत्य के कारण स्थित है। सत्य की श्रेष्ठता बताते हुए कहा गया है कि सत्य ही प्राणरूप शब्दब्रह्म है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अविनाशी वेद है और सत्य से ही परमब्रह्म की प्राप्ति होती है–

**सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।**
**सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्यते परम्॥**[7]

केवल साधारण मनुष्य ही नहीं अपितु ऋषियों और मुनियों द्वारा भी सदा सत्य का बहुत सम्मान किया जाता है, क्योंकि सत्य को अक्षय परमधाम की प्राप्ति का साधन माना गया है।[8]

हमारे शास्त्रों के अनुसार श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण मनुष्य भी उसी का अनुगमन करते हैं।[9] इसीलिए रामायण के कथानायक राम को मूर्तिमान् सत्य के रूप में

1. मनुस्मृति, 8.83.
2. चाणक्यसूत्र, 4.17.
3. मनुस्मृति, 6.92.
4. याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, 122.
5. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1.11.
6. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 14.3.
7. वही, अयोध्या काण्ड, 14.7.
8. वही, अयोध्या काण्ड, 109.11.
9. गीता, 3.25.

प्रतिष्ठित किया गया है। राम ने सत्य की रक्षा के लिए ही चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार कर लिया था।[10] सुग्रीव से मित्रता हो जाने पर बालिवध की प्रतिज्ञा करते हुए सुग्रीव से कहा कि मैंने पहले भी कभी असत्य भाषण नहीं किया और भविष्य में भी कभी नहीं करूँगा–

**अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन।**
**एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव शपाम्यहम्॥**[11]

राम केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु समस्त प्राणियों के लिए भी सत्यरूपी धर्म को हितकर और सब धर्मों में श्रेष्ठ समझते थे।[12] इसलिए राम न केवल स्वयं, अपितु दूसरों से भी सत्यपालन की अपेक्षा करते थे। इसका कारण यह है कि संसार में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई परम पद नहीं माना गया–

**सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।**
**सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥**[13]

धर्म की पराकाष्ठा होने के कारण सत्य का पालन करने के लिए अगर मनुष्य को अपने जीवन का बलिदान भी करना पड़े तो वह भी कर देना चाहिए, यथा पृथ्वीपति राजा शैव्य ने बाज पक्षी को अपना शरीर देने की प्रतिज्ञा करके सत्य की रक्षा के लिए अपने शरीर का भी त्याग कर दिया था, जिस कारण उन्हें उत्तम गति प्राप्त हुई।[14] सत्य का पालन करना यद्यपि परम आवश्यक है, तथापि सत्य का पालन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सत्य पराई पीड़ा से रहित होना चाहिए। इसलिए अप्रिय सत्य का कथन न करना धर्म कहा गया है, क्योंकि अप्रिय वचनों से पीड़ा उत्पन्न होती है–

**सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।**
**प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥**[15]

निष्कर्षतः यह माना जा सकता है कि सत्य मनुष्य के लिए एक संजीवनी है। सत्य एक ऐसा ज्योति–स्तम्भ है, जिसका प्रकाश सम्पूर्ण मानव–मन को आलोकित करता है। अतः दान, यज्ञ, होम, तपस्या आदि सबका आधार होने के कारण प्रत्येक मनुष्य को सत्य का पालन करना चाहिए–

**दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।**
**वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्॥**[16]

**–शोध छात्रा, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई एस. ( पी. यू. ) होशियारपुर।**

10. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 107.8.
11. वही, किष्किन्धा काण्ड, 7.22.
12. वही, अयोध्या काण्ड, 109.19.
13. वही, अयोध्या काण्ड, 109.13.
14. वही, अयोध्या काण्ड, 14.4.
15. मनुस्मृति, 4.138.
16. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 109.14.

# विविध समाचार

**वार्षिक महोत्सव –**

श्रीगुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट, करतारपुर (पंजाब) का 47वां एवं श्रीगुरु विरजानन्द गुरुकुल महाविद्यालय, करतारपुर का 43वां वार्षिक महोत्सव, आश्विन शुक्लपक्ष दशमी से कार्तिक कृष्णपक्ष द्वितीया विक्रमी संवत् 2070 (14 अक्तूबर, 2013, सोमवार से 20 अक्तूबर, 2013, रविवार) तक सोल्लास मनाया गया। जिसमें सामवेद पारायण यज्ञ, श्लोकोच्चारण, मन्त्रोच्चारण एवं हिन्दी भाषण-प्रतियोगिता, श्रीगुरु विरजानन्द सम्मेलन, महिला सम्मेलन, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण सम्मेलन आदि कार्यक्रम सुचारु रूप से सम्पन्न हुए। इस सम्मेलन में बहुत से प्रतिष्ठित विद्वानों ने भाग लिया।

**वार्षिक महोत्सव –**

गुरुकुल आर्यनगर, हिसार का 49वां वार्षिक महोत्सव आश्विन शुक्ल 1-2, सं. 2070 वि. तदनुसार 5, 6 अक्तूबर, 2013 शनिवार तथा रविवार को बड़े उत्साह से मनाया गया। जिसमें बहुत संख्या में साधु, संन्यासी, वैदिक विद्वानों, भजनोपदेशकों ने अपने उपदेशों और भजनों से उपस्थित जनता को लाभान्वित किया।

**वार्षिक महोत्सव –**

अखिल भारतीय दयानन्द साल्वेशन मिशन, देवीचन्द भवन, नज़दीक पुराना ऊना बस स्टैंड, होशियारपुर द्वारा दिनांक 18 अक्तूबर, 2013, शुक्रवार से 20 अक्तूबर, 2013, रविवार तक **वेदज्ञान यज्ञ** का आयोजन किया गया। जिसमें बहुत से विद्वानों ने अपने प्रवचनों तथा भजनोपदेशकों ने अपने भजनों से उपस्थित जनता को कृतार्थ किया।

**2 से 4 साल के बच्चे जल्दी भाषा सीखते हैं –**

लंदन, 9 अक्तूबर (वार्ता) : भाषा सीखने के लिए 2 से 4 वर्ष की उम्र सबसे अच्छी होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस उम्र में माइलिन का स्राव होने से उनकी सीखने की क्षमता सर्वाधिक होती है। अमरीकी और ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने इस संबंध में कहा कि 4 वर्ष की उम्र से पहले यदि बच्चों को बहुभाषी माहौल में रखा जाए तो वे आराम से एक से अधिक भाषा सीख सकते हैं।

**➻ शोर भरे स्थान पर दिल की बीमारी का अधिक खतरा –**

लंदन, 9 अक्तूबर (वार्ता) : यदि आप ऐसे स्थान में रहते हैं जहां लगातार ज्यादा शोर होता रहता है तो आपको दिल का दौरा पड़ने की अधिक संभावना हो सकती है। ब्रिटेन में हीथ्रो हवाई अड्डे के निकट रहने वाले लोगों पर किए गए एक अध्ययन में पता चला है कि इनमें हार्ट अटैक और रक्त संचार संबंधी बीमारियों का खतरा अधिक होता है। अध्ययन के अनुसार लोग या तो इन बीमारियों के कारण कभी न कभी अस्पताल में भर्ती हुए हैं या इनमें से कई की इन बीमारियों से मृत्यु हो गई।

**➻ गंजेपन से बचना है तो अपनाएं सही खानपान –**

यदि किसी के कम उम्र में ही बाल सफेद होने लगें या झड़ने लगें तो चिंता होना स्वाभाविक ही है। आज बहुत से युवक ऐसे देखे जा सकते हैं जो बालों का रंग काला रखने के लिए भरी जवानी में भी हेयर डाइयों का सहारा लेते हैं।

फिनलैंड के कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के बाल 30 वर्ष की आयु से पहले ही झड़ने शुरू हो जाते हैं तो उनके लिए सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि ऐसे व्यक्तियों को हृदयरोग, गठिया, मोटापा, मधुमेह, हाइपरटैंशन आदि विभिन्न बीमारियों का खतरा भी बढ़ जाता है।

# संस्थान-समाचार

**दान–** रु.

सर्वश्री बैजनाथ भण्डारी सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास, डिफैन्स कालोनी, नई दिल्ली। 20,000/-

Mr. Anil Vasudeva, Kingsbury, London (U. K.) £ 100

श्रीमती ममता सुरी, मास्टर तारा सिंह नगर, जालन्धर शहर। 1000/-

डॉ. रघबीर सिंह, 133 न्यू बैंक कालोनी, साधु आश्रम, होशियारपुर। 1000/-

अतर दीवान ट्रस्ट, कुमार निवास, सिविल लाईन, मुरादाबाद। 1000/-

श्री विजय कुमार शर्मा, इंग्लैण्ड (यू. के.)। 1000/-

श्री आर. सी. रस्तोगी, केन्द्रीय विद्यालय, खड़की, पूणे। 501/-

श्री आर. बी. दत्त,, जी. टी. रोड, पानीपत। 200/-

**छात्रवृत्ति –**

Dr. G. K. Sharma, Tennessee, U. S. A. £ 101

---

**आचार्य विश्वबन्धु जयन्ती–**

30 सितम्बर, 2013 को संस्थान के संस्थापक-संचालक पद्मभूषण स्व. आचार्य विश्वबन्धु जी की जयन्ती मनाई गई। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति श्री मनोहर लाल जी सूद उपस्थित थे।

इस अवसर पर सर्वप्रथम हवन यज्ञ किया गया। उसके पश्चात् संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल जी ने आचार्य जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उन्हें नमनपूर्वक श्रद्धांजलि भेंट की। इसके पश्चात् मुख्य अतिथि श्री मनोहर लाल जी सूद ने आचार्य जी की विद्वत्ता तथा विशेषताओं को बताया एवं संस्थान की प्रगति की कामना की।

**हवन-यज्ञ–**

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य दिवस का शुभारम्भ प्रति सप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। अक्तूबर 2013 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ किया गया।

**शुभकामना –**

स्व. आचार्य ऋषिराम जी के सुपुत्र श्री कर्मवीर बंसल जी के 81वें जन्म दिन के उपलक्ष्य में संस्थान के सत्संग मन्दिर में दिनांक 24.10. 2013 को हवन-यज्ञ का आयोजन किया गया तथा उनकी दीर्घायु के लिए शुभकामना प्रकट की गई।

**शोक-समाचार –**

भाषा विज्ञान और व्याकरण के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, पंजाब विश्वविद्यालय पटल के भूतपूर्व निदेशक श्री वीरेन्द्र कुमार जी का 14.10.2013 को दिल्ली में देहान्त हो गया। आप पिछले कई वर्षों से बीमार चल रहे थे और अपनी सुपुत्री के पास शिमला में रह रहे थे। आपने विश्वेश्वरानन्द संस्थान के अनुसन्धान विभाग में भी काम किया। आपने कई लेख व पुस्तकें भी लिखीं। संस्थान की ओर से शोकाकुल परिवार के प्रति समवेदना प्रकट की जाती है तथा प्रभु से प्रार्थना की जाती है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्त्तुं प्रेममनिन्दितम्।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः॥

उपकार करना, प्रिय बोलना, अनिन्दित प्रेम करना, यह सब बड़े लोगों में स्वभाव से ही होता है। जैसे चन्द्रमा को शीतल करना किसने सिखाया है ?

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथः

**सर्वश्री बैजनाथ भण्डारी सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास**

इ-22, डिफैन्स कालोनी,
नई दिल्ली-110 024

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥

महाभारत, 3. 281. 34

मन, वचन और कर्म से किसी से वैर न करना तथा दया और दान करना यह सब मनुष्य की शालीनता (सज्जनता) ही है।

*With best compliments from :*

*Mr. Anil Vashudeva*

*8, Prince's Avenue,*

*Kingsbury,*

*London (U. K.)*

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**
**उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥**

ऋ. 7, 59, 12

हम त्र्यम्बकदेव की पूजा करते हैं। वह सुख देने वाला और पुष्टि करने वाला है। जैसे तरबूज पक कर अपने आप बेल से अलग हो जाता है, वैसे ही मैं मृत्यु से छूट जाऊँ, परन्तु अमृत से नहीं।

# श्री पूज्य देव किशन जी भल्ला

की याद में

**भल्ला परिवार**

वालों

की ओर से

**श्रीमती कृष्ण भल्ला ( पत्नी )**
**श्रीमती पूजा भल्ला ( पुत्रवधू )**
**श्री गौतम भल्ला ( पुत्र )**
**श्री गौरव भल्ला ( पुत्र )**
**मास्टर दिव्य सांई भल्ला ( पौत्र )**

**दामाद :–**
**श्री राकेश सूरी (I. R. S.)**
**श्रीमती ममता सूरी ( बेटी )**
**दोहता एवं दोहती :–**
**गिरिजा सूरी, असीम सूरी**

प्रयोजिका : –

**श्रीमती ममता सूरी**

**150, मास्टर तारा सिंह नगर, जालंधर**

**अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।**
**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥**

हितोपदेश

यह हमारा है, यह दूसरे का है। यह ओछे चित्त वालों की सोच होती है। उदारचित्त वाले व्यक्ति के लिए सारा संसार ही अपना होता है। उनके लिए कोई पराया नहीं होता। न ही वे किसी से वैरभाव रखते हैं।

**हार्दिक शुभ कामनाओं के साथः**

# ठाकुर डॉ. रघबीर सिंह

**भूतपूर्व चेयरमैन,**
**वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस.,**
**साधु आश्रम, होशियारपुर।**

अनागतविधातारमप्रमत्तमकोपनम्।
चिरारम्भमदीनं च नरं श्रीरुपतिष्ठति॥

महाभारत, 12. 116. 16.

जो होनहार को आगे से सोच करके रखता है और सावधान रहता है तथा क्रोध नहीं करता और बिना सोचे-समझे किसी काम को सहसा नहीं करता तथा दीन नहीं होता, उसके पास धन अपने-आप आया करता है।

अपने पूज्य पिता

# स्व. श्री हरवंस लाल कुमार जी

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

## श्री देवेन्द्र लाल कुमार

अतर दीवान ट्रस्ट, कुमार निवास,

कम्पनी बाग, मुरादाबाद- 244 001

# मंगल सुविचार

जो मेरे भाग्य में नहीं है, वो दुनिया की कोई भी शक्ति मुझे नहीं दे सकती और जो मेरे भाग्य में है, उसे दुनिया की कोई भी शक्ति छीन नहीं सकती। ईश्वरीय शक्ति असम्भव को सम्भव बना सकती है। अतः कर्म ही ''कामधेनु' एवम् प्रार्थना ही ''पारसमणी'' है।

प्रयोजक :

**श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा**

मंगल भवन, सिविल लाईन्ज़, रुक्मनी स्कैन सैन्टर के सामने वाली गली,
पुराना माहिलपुर बस स्टैंण्ड के समीप,
होशियारपुर-146001

**अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमःश्रुतं च।**
**पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥**

महाभारत

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय संयम, अध्ययन, शूरता, मितभाषण, शक्ति के अनुसार दान और किए हुए उपकार को मानना– ये आठ गुण पुरुष की शोभा को बढ़ाते हैं।

**हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :**

# जस्टिस राजेन्द्रनाथ मित्तल ( सेवानिवृत्त )

(Retired Judge Punjab & Haryana High Court, Chandigarh)

**B 5/3, सफदरजंग एनक्लेव,**
**नई दिल्ली–110 029**

**एकः परोपकारो हि संसारे ऽस्मिन्ननश्वरः।**
**यो धर्मयशसी सूते युगान्तशतसाक्षिणी॥**

कथासरित्सागर

इस अनित्य संसार में कभी नष्ट न होने वाला परोपकार ही है जो युग-युगों तक धर्म और यश को बनाए रखता है।

❁

पूज्य पिता

# स्व. श्री पुरुषोत्तम लाल जी रस्तोगी

तथा

पूज्या माता

# स्वर्गीया श्रीमती राजकुमारी देवी जी

एवं

स्वर्गीया धर्मपत्नी

# श्रीमती माधुरी रस्तोगी

**की**

पुण्य स्मृति

**में**

प्रयोजक :

## प्रिं. आर. सी. रस्तोगी

**केन्द्रीय विद्यालय, खड़की, पुणे ( महाराष्ट्र )**

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर ( पंजाब ) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ ( पंजाब ) से २८-१०-२०१३ को प्रकाशित।